Special Edition

The Nationalist

10 YEARS

Issue: June 2025

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

आपातकाल के 50 साल

(25 जून, 1975-21 मार्च, 1977)

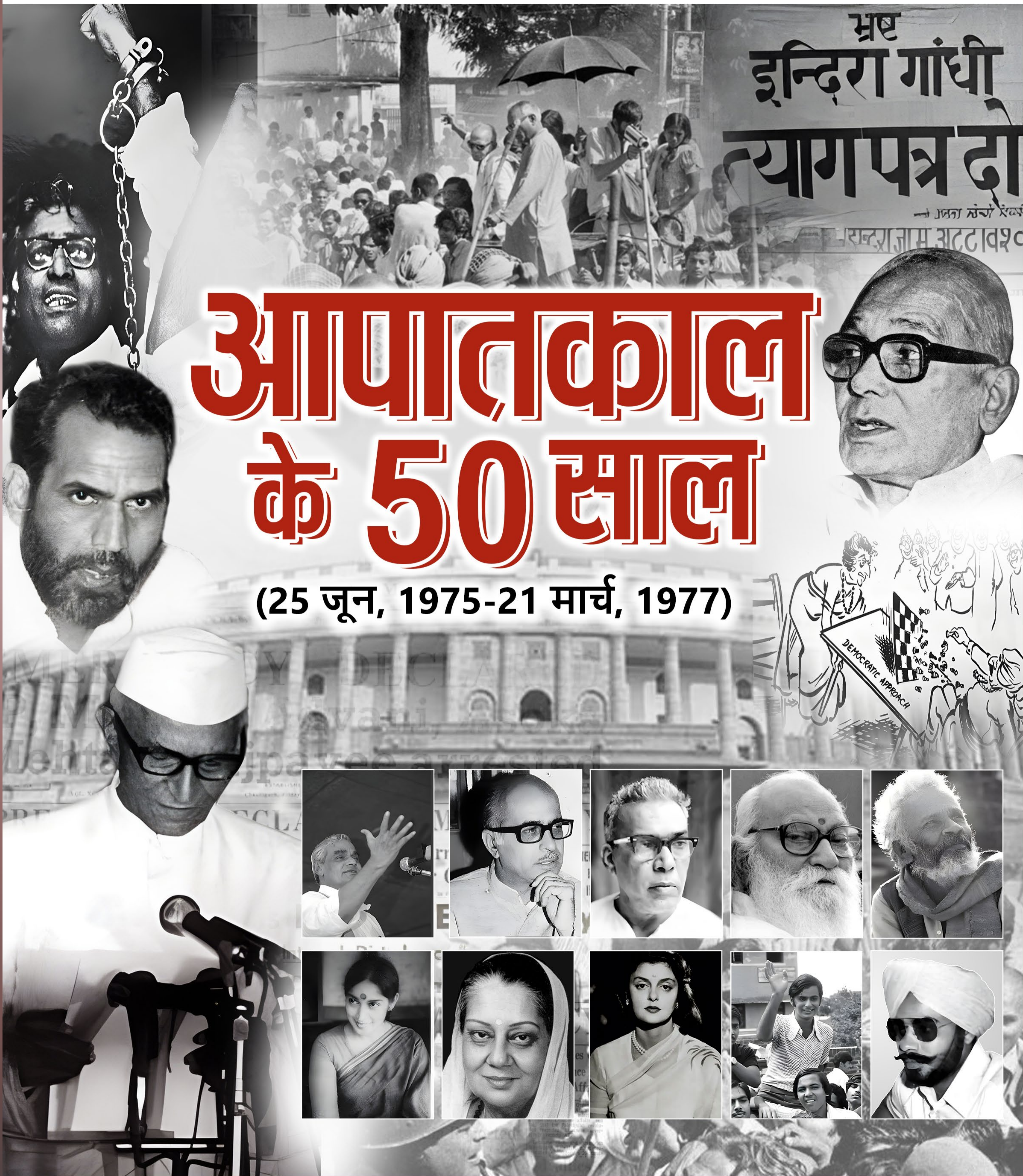

Editor-in-Chief

Binay Kumar Singh
Director, SPMRF

Editor

Prof. P. Kanagasabapathi
Secretary & Trustee, SPMRF

Assistant Editor

Pathikrit Payne
Senior Research Fellow, SPMRF

Editorial Advisory Board

Dr. Anirban Ganguly
Chairman, SPMRF

Dr. Pritam Banerjee
Senior Research Fellow, SPMRF

Shivesh Pratap
Senior Research Fellow, SPMRF

Research Team

- Ayush Anand
- Manujam Pandey
- Dhruv P Das

Design
Ajit Kumar Singh

ISSN 2454-9401

CONTENT

EDITORIAL

* आपातकाल के 50 साल – **बिनय कुमार सिंह**

ARTICLES

* भारतीय लोकतंत्र का काला अध्यायः आपातकाल, दमन और संविधान की आत्मा पर आघात – **अजय धवले**
* आपातकाल 1975ः भारतीय लोकतंत्र की अग्निपरीक्षा और जनचेतना का पुनर्जागरण – **डॉ शैलेन्द्र शुक्ला**
* India's Darkest Hours: The Emergency and the Fight for Democracy – **Abhas Verma**
* क्रूरकाल की करतूतों का काला चिट्ठा – **इंदुशेखर तत्पुरुष**
* आपातकालःलोकतन्त्र की हत्या का वीभत्स दौर – **कृष्ण मुरारी त्रिपाठी अटल**
* The Emergency and the Test of the Indian Judiciary – **Adv. Tahir Majeed**
* आपातकाल के अँधेरे को चुनौती देती लोकचेतना – **पवन कुमार पाण्डेय**
* June 25, 1975: The Day India's Democracy Was Put on Trial And the Legacy That Guides It Still – **Dr. Prosenjit Nath**
* Emergency 1975-77: The Night Democracy Lost its Voice – **Varun Kumar**
* आपातकालः एक व्यक्ति बनाम राष्ट्र की लड़ाई – **सचिन तिवारी**

EVENTS

POADCAST

आपातकाल के 50 साल

बिनय कुमार सिंह
निदेशक, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन

"जासु राज निज प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में कहा है कि जिस राजा के राज में उसकी प्रजा दुःखी हो, भयभीत हो, ऐसा राजा अपने संचित कर्मों के फलस्वरूप नरक का अधिकारी होता है। एक ऐसा काल भी हमने देखा है, जब जनता त्रस्त थी, उसके अधिकार छीन लिए गए थे। देश में आपातकाल लगा दिया गया था। आज हम भारत के लोकतांत्रिक इतिहास के सबसे काले अध्याय 25 जून, 1975 को आपातकाल की घोषणा की 50वीं वर्षगांठ की दहलीज पर खड़े हैं। हमारे संविधान की प्रस्तावना में लिखी पहली लाइन- 'हम भारत के लोग ' पर तत्कालीन इंदिरा सरकार का कुठाराघात सिर्फ आपातकाल के नाम से नहीं अपितु लोकतंत्र में 'आघातकाल' के नाम से याद रखा जाना चाहिए। यह क्रूर घटना भारत की लोकतांत्रिक चेतना के दमन का काला अध्याय है।

भारत के मौलिक सिद्धांतों के विपरीत, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा देश पर आपातकाल थोप दिया गया था। आंतरिक अशांति का हवाला देकर उन्होंने नागरिक स्वतंत्रताओं को निलंबित कर दिया था, प्रेस पर सेंसरशिप लगाई, विपक्ष के नेताओं को जेल में डाल दिया और सत्ता का केंद्रीकरण कर लिया। यह अवधि 25 जून 1975 से मार्च 1977 तक चली। यह निर्णय न केवल एक तानाशाही कदम था, बल्कि उस मानसिकता का भी प्रतिबिंब था जिसमें गांधी परिवार की सत्ता और नियंत्रण की लालसा संवैधानिक मूल्यों से ऊपर रखी गई। शुरुआत से नेहरू-गांधी परिवार के शासनकाल में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित किया गया और आपातकाल इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। नेहरू की नेतृत्व शैली ने देश में सर्वप्रथम वंशवादी राजनीति के बीज बोए। कांग्रेस पार्टी में उनकी प्रमुखता, और शक्ति के केन्द्रीयकरण ने यह सुनिश्चित किया कि उनकी बेटी, इंदिरा गांधी, को कम उम्र से ही नेतृत्व के लिए तैयार किया जाए। नेहरू ने अपने इर्द-गिर्द परिवार-केंद्रित दृष्टिकोण का ऐसा मंच तैयार किया, जो आज कांग्रेस पार्टी की पहचान बन गया है।

आपातकाल की जड़ें नेहरू युग से ही अंकुरित हो चुकी थीं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिए 1951 में नेहरू ने पहला संवैधानिक संशोधन किया था। जवाहरलाल नेहरू ने 1951 में कठोर प्रेस (आपत्तिजनक मामला) अधिनियम के माध्यम से प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना शुरू किया। उन्होंने इस दौरान कई हस्तियों को गिरफ्तार किया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध तब दिखाई दिया जब कवि और गीतकार मजरुह सुल्तानपुरी को नेहरू पर आलोचनात्मक कविता लिखने के लिए गिरफ्तार कर लिया गया और एक साल जेल में बिताना पड़ा। नेहरू शासन ने 1951 में, राष्ट्रवादी अंग्रेजी साप्ताहिक 'द ऑर्गनाइज़र' के खिलाफ एक आदेश पारित किया। जिसमें अखबार को प्रकाशन से पहले सभी लेख, समाचार, कार्टून, और चित्र जांच के लिए प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि अखबार सांप्रदायिक मुद्दों और पाकिस्तान विभाजन सम्बंधित मुद्दों पर सच्ची सामग्री छापता था।

गांधी परिवार के नेतृत्व वाली कांग्रेस की राजनीति न केवल सत्ता केंद्रित रही है, बल्कि उसने समाज के जीवंत आंदोलनों को भी या तो बदनाम करने का प्रयास किया या उन्हें कुचलने की रणनीति अपनाई। गोरक्षा आंदोलन इसका सशक्त उदाहरण है। भारत में गोरक्षा कोई नई परंपरा नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक रही है, जिसकी जड़ें वैदिक काल से लेकर स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी और अन्य राष्ट्र निर्माताओं तक फैली हुई हैं। परन्तु जब स्वतंत्र भारत में 1966 में संसद के बाहर लाखों लोगों ने गोरक्षा की मांग को लेकर ऐतिहासिक प्रदर्शन किया, तब कांग्रेस सरकार ने उस आंदोलन को धार्मिक कट्टरता का जामा पहनाकर दबाने का प्रयास किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के शासन में न केवल इस आंदोलन को अनसुना किया गया, बल्कि प्रदर्शनकारियों पर बल प्रयोग कर कई लोगों की जान ले ली गई। यह घटना कांग्रेस की उस विचारधारा को उजागर करती है, जिसमें जनता की सांस्कृतिक आस्था को केवल राजनीतिक असुविधा के रूप में देखा जाता है। बाद में जब देश के विभिन्न हिस्सों में गोरक्षा समितियां बनीं और समाज में स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से गोसंरक्षण का कार्य होने लगा, तो कांग्रेस द्वारा बार-बार इस जन—आंदोलन को 'भीड़तंत्र' और 'अंधविश्वास' कहकर उसकी विश्वसनीयता पर हमला किया गया। दरअसल, कांग्रेस के लिए हर वह आंदोलन असहनीय रहा है, जो उसकी सत्ता की परिधि से बाहर खड़ा हो और जिसे जनता की आत्मा से समर्थन मिलता हो। यही कारण है कि गोरक्षा आंदोलन भी कांग्रेस की नीतियों की उस लंबी सूची में शामिल हो गया, जिसे या तो कुचलना था या कलंकित करना।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में छपने वाले एक लोकप्रिय कॉलम को बंद करवाने का दबाव डाला था, जिसे वरिष्ठ सिविल सेवक और लेखक एडी गोरवाला 'विवेक' उपनाम से लिखते थे। यह कॉलम नेहरू सरकार की नीतियों की सटीक और साहसिक आलोचना करता था, जिससे वे असहज हो उठे। नेहरू के कांग्रेस शासन ने प्रकाशन क्रॉसरोड्स को गैरकानूनी घोषित कर दिया। सुप्रीम कोर्ट ने बाद में पत्रिका के प्रतिबंध को पलट दिया, लेकिन नेहरू ने भारतीय संविधान में पहले संशोधन का उपयोग करके ऑर्गनाइज़र और क्रॉस रोड्स पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को बदल दिया।

बिल फाड़ना, व्यंग्यकार की गिरफ्तारी, शांतिपूर्ण आंदोलनों पर लाठीचार्ज, साहित्यिक स्वतंत्रता पर हमले और सत्ता की वंशवादी निरंतरता, यह परिवार अक्सर शासन और राष्ट्रीय हितों से ऊपर पारिवारिक निष्ठा को प्राथमिकता देता रहा है । जवाहर लाल नेहरू,

इंदिरा गांधी से होते हुए राजीव गांधी और राहुल गांधी की राष्ट्रहित के विपरीत कार्यशैली में भी इसी मानसिकता की झलक मिलती है। कांग्रेस पार्टी और विशेषकर गांधी परिवार ने समय-समय पर यह साबित किया है कि जब उनकी सत्ता को चुनौती मिलती है, तब संवैधानिक मर्यादाएं और नागरिक अधिकार गौण हो जाते हैं।

भोपाल गैस त्रासदी (1984) में हजारों निर्दोषों की जानें गईं, लेकिन जिम्मेदार कंपनी यूनियन कार्बाइड के सीईओ वॉरेन एंडरसन को भारत से सुरक्षित निकलने दिया गया। यह तब हुआ जब केंद्र में कांग्रेस पार्टी सरकार थी और राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे। यह सत्ता की उदासीनता नहीं बल्कि विदेशी हितों के समक्ष झुकने की प्रवृत्ति थी। इसी तरह नेशनल हेराल्ड घोटाले में भी गांधी परिवार पर आरोप लगे कि कैसे सार्वजनिक धन और पार्टी के संसाधनों का दुरुपयोग कर, निजी संस्थाओं को लाभ पहुंचाया गया। यह प्रकरण सत्ता-संचालन को पारिवारिक संस्था बनाने की उस मानसिकता का ही एक और उदाहरण है। 1988 में राजीव गांधी सरकार ने "मानहानि विधेयक" लाकर प्रेस की स्वतंत्रता पर नियंत्रण करने की कोशिश की। देशभर के पत्रकारों ने इस बिल का विरोध किया। सरकार को अंततः यह विधेयक वापस लेना पड़ा, परन्तु यह स्पष्ट हो गया कि गांधी परिवार को स्वतंत्र मीडिया रास नहीं आता। उनकी सत्ता-व्यवस्था में मीडिया केवल सरकार की वाहवाही करे, यही अपेक्षा रहती है।

जब मध्यप्रदेश की कांग्रेस सरकार ने भोपाल में स्थित माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में परिवर्तन की कोशिश की, तो यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस पार्टी विचारधारात्मक सेंसरशिप को फिर से लागू करना चाहती है। जिन्होंने वैकल्पिक या राष्ट्रवादी विचारधारा को पढ़ाने की कोशिश की, उन्हें बाहर कर दिया गया या ट्रांसफर कर दिया गया। यह सब एक बार फिर दर्शाता है कि कांग्रेस के शासन में 'विचार' की आज़ादी हमेशा संदेह के घेरे में रहती है।

2011 में भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन आंदोलन अपने चरम पर था। उसी दौर में असीम त्रिवेदी जैसे युवा कार्टूनिस्ट ने अपने रचनात्मक माध्यम से सत्ता पर सवाल उठाया, परन्तु उन्हें 'देशद्रोह' के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। यह गिरफ्तारी दर्शाती है कि कांग्रेस सरकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से कितना डरती है। देश के युवाओं को यह स्पष्ट संदेश दिया गया कि सत्ता की आलोचना करना 'अपराध' माना जाएगा। यह नीतिगत आचरण 1975 की इमरजेंसी के समान ही है, जहां किसी भी असहमति को कुचल दिया गया था। जून 2011 में योगगुरू बाबा रामदेव ने दिल्ली के रामलीला मैदान में काले धन के खिलाफ शांतिपूर्ण अनशन शुरू किया। उस समय की कांग्रेस सरकार ने आधी रात को सोते हुए संतों और महिलाओं पर लाठीचार्ज करवाया। यह अमानवीय और बर्बर कृत्य उस सत्ता-भोगी मानसिकता को दर्शाता है, जो जनआंदोलनों को असहनीय समझती है। सत्ता के अहंकार में इस घटना को "कानून व्यवस्था का हिस्सा" कहकर सही ठहराया गया। क्या यह वही भारत है, जहां संविधान नागरिकों को शांतिपूर्ण प्रदर्शन का अधिकार देता है? गजानन माधव मुक्तिबोध की चर्चित कृति भारतीय संस्कृति और साहित्य में उन्होंने स्पष्ट कहा था कि जब सत्ताधारी वर्ग संस्कृति को सत्ता के उपकरण के रूप में प्रयोग करता है, तब वह संस्कृति नष्ट होती है और सत्ता निरंकुश हो जाती है। कांग्रेस और गांधी परिवार के कालखंड में इस चेतावनी को लगातार अनदेखा किया गया। साहित्य और संस्कृति को सत्ता के नियंत्रण में लाने की कोशिशें हुईं, जिससे स्वतंत्र रचनात्मकता बाधित हुई।

राहुल गांधी को उनकी पार्टी और समर्थकों द्वारा "विचारधारा का प्रतीक" बताया जाता है, लेकिन उनकी राजनीतिक शैली, सोच और प्रतिक्रियाएं पारिवारिक सत्ता-धारा की निरंतरता का ही हिस्सा लगती हैं। उन्होंने संसद में भाषणों से ज्यादा दिखावटी आंदोलनों और ट्वीट राजनीति को महत्व दिया। देश की लोकतांत्रिक संस्थाओं पर अविश्वास, न्यायालय के निर्णयों पर टिप्पणी, सेना पर संदेह इन सबका एकमात्र लक्ष्य सत्ता में वापसी है, भले ही इसके लिए राष्ट्रहित से समझौता क्यों न करना पड़े। जब लोकसभा में जनता से जुड़े महत्वपूर्ण विधेयकों पर चर्चा होती है, तो वहां की मर्यादा और गरिमा का पालन अपेक्षित होता है। लेकिन राहुल गांधी जैसे वरिष्ठ नेता ने प्रेस कॉन्फ्रेंस में "बिल फाड़ने" जैसी घटनाओं से न केवल लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अपमान करते हैं, बल्कि यह दर्शाते हैं कि जब विचारों में तर्क न हो, तब हिंसात्मक प्रतीकों का सहारा लिया जाता है। यह वही मानसिकता है, जिसमें विरोध की जगह आक्रोश और संवैधानिक पथ की जगह व्यक्तिगत वर्चस्व प्रमुख हो जाता है।

1975 की इमरजेंसी कोई राजनीतिक भूल नहीं थी, बल्कि एक मानसिकता थी, जो आज भी कांग्रेस पार्टी में जीवित है। यह वही मानसिकता है जो जनमत को नहीं, बल्कि पारिवारिक नेतृत्व को सर्वोपरि मानती है। इमरजेंसी के दौरान प्रेस पर सेंसरशिप, लोगों की गिरफ्तारियां, संविधान में अनुचित संशोधन, न्यायपालिका पर दबाव इन सबका दोहराव अब एक नए रूप में दिख रहा है, कभी यूएपीए के नाम पर, कभी टैक्स नोटिसों के जरिए, तो कभी पुलिस कार्रवाई से।

नेहरू - गांधी परिवार ने भारतीय लोकतंत्र को जितना मजबूत नहीं किया, उससे कहीं अधिक उसे सत्ता के लिए कमजोर किया। वंशवादी राजनीति, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश, संस्थाओं का दमन और वैचारिक एकाधिकार कांग्रेस और गांधी परिवार की साझा पहचान बन चुकी है। 1975 की इमरजेंसी केवल एक दिन की घटना नहीं थी, वह कांग्रेस की पोलिटिकल कल्चर का शाश्वत प्रतीक बन गई है जिसका विस्तार आज तक हो रहा है।

अगर लोकतंत्र को सच में बचाना है, तो जनता को उस मानसिक आपातकाल को पहचानना होगा, जहाँ सत्ता जनता के सवालों से डरती है, अभिव्यक्ति पर पहरा बैठाया जाता है और विरोध की आवाज़ को दबा दिया जाता है। ऐसे माहौल को ठुकराना ही लोकतंत्र की असली रक्षा है।

'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।'

-मुंडकोपनिषद 3.1.6

अर्थात्: "सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। सत्य के द्वारा ही देवयान मार्ग विस्तारित होता है।"

यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि सत्य और न्याय के मार्ग पर चलने से ही राष्ट्र की सच्ची उन्नति संभव है, और अधर्म व असत्य का मार्ग अंततः विनाश की ओर ले जाता है।

जय हिंद!

भारतीय लोकतंत्र का काला अध्याय: आपातकाल, दमन और संविधान की आत्मा पर आघात

अजय धवले

प्रदेश प्रवक्ता, भाजपा मध्यप्रदेश एवं कॉर्पोरेट लॉयर

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में 25 जून, 1975 की तारीख एक ऐसे काले अध्याय के रूप में अंकित है, जिसने देश के लोकतांत्रिक ताने-बाने को लगभग छिन्न-भिन्न कर दिया था। इसी दिन तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सलाह पर राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने देश में आंतरिक अशांति के नाम पर संविधान के अनुच्छेद 352 के तहत आपातकाल (Emergency) की घोषणा की। यह आपातकाल 21 महीनों तक, यानी 21 मार्च, 1977 तक चला। यह दौर इंदिरा गांधी सरकार की तानाशाही, अभूतपूर्व दमनकारी नीतियों, प्रेस की स्वतंत्रता पर क्रूर प्रहार, मौलिक अधिकारों के निलंबन और राजनीतिक विरोधियों के निर्मम दमन के लिए जाना जाता है।

यह वह समय था जब सत्ता के दंभ ने भारत के गौरवशाली संविधान की आत्मा पर सीधा प्रहार किया। आज भी, 25 जून का यह दिन हमें उस स्याह दौर की याद दिलाता है, जब लोकतंत्र की धड़कनें थम सी गई थीं।

आपातकाल की पृष्ठभूमि: न्यायपालिका पर आघात

आपातकाल की नींव 12 जून, 1975 को ही रख दी गई थी, जब इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया। यह फैसला 1971 के लोकसभा चुनाव में रायबरेली सीट पर इंदिरा गांधी के निर्वाचन के खिलाफ उनके प्रतिद्वंद्वी राजनारायण द्वारा दायर याचिका पर आया था। न्यायालय ने इंदिरा गांधी को सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग और चुनावी भ्रष्टाचार का दोषी पाते हुए उनके निर्वाचन को अवैध घोषित कर दिया और अगले छह वर्षों के लिए उनके किसी भी निर्वाचित पद पर रहने पर रोक लगा दी।

यह न्यायिक आघात इंदिरा गांधी के राजनीतिक अस्तित्व पर सीधा प्रहार था। सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें प्रधानमंत्री बने रहने की सशर्त अनुमति तो दी, लेकिन उन्हें संसद में मतदान करने का अधिकार नहीं था। इस स्थिति को अपनी सत्ता के लिए सीधा खतरा मानते हुए, इंदिरा गांधी ने उसी रात आपातकाल की घोषणा कर दी। यह निर्णय, एक न्यायिक फैसले को दरकिनार करने और अपनी सत्ता बचाने की एक हताश कोशिश का प्रतीक बन गया।

दमनकारी नीतियाँ और मौलिक अधिकारों का हनन: 'संविधान हत्या दिवस' की विभीषिका

आपातकाल की घोषणा के साथ ही देश पर सरकारी दमन का कहर टूट पड़ा। सरकार ने नागरिक स्वतंत्रता को पूरी तरह से कुचलने के लिए कई कठोर कदम उठाए । 25 जून का दिन, जिस दिन आपातकाल की घोषणा हुई, भारत सरकार द्वारा अब 'संविधान हत्या दिवस' के रूप में घोषित किया गया है, क्योंकि इस दिन भारत के संविधान में निहित मौलिक अधिकारों और लोकतांत्रिक मूल्यों का निर्ममता से गला घोंटा गया था।

गृह मंत्री अमित शाह जी ने संसद में इस दिन को लेकर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है: "25 जून 1975 को आपातकाल की घोषणा भारत के इतिहास का एक काला अध्याय है। इस दिन, कांग्रेस ने सत्ता के लिए लोकतंत्र की हत्या की। मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए गए, प्रेस पर सेंसरशिप थोपी गई, और हजारों निर्दोष लोगों को जेल में डाल दिया गया। यह केवल सरकार का दुरुपयोग नहीं, बल्कि संविधान की आत्मा पर सीधा हमला था। यह दिवस हमें यह याद दिलाता है कि सत्ता की भूख किस प्रकार एक राष्ट्र के लोकतांत्रिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर सकती है। हम उन सभी सेनानियों को नमन करते हैं, जिन्होंने उस अंधकारमय दौर में लोकतंत्र को बचाने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।"

आपातकाल की प्रमुख दमनकारी कार्रवाईयाँ:

मौलिक अधिकारों का निलंबन: संविधान के अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता), अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार), और अनुच्छेद 22 (गिरफ्तारी और नजरबंदी के खिलाफ संरक्षण) को निलंबित कर दिया गया। इसका अर्थ था कि किसी भी नागरिक को बिना कोई कारण बताए अनिश्चित काल के लिए जेल में डाला जा सकता था और उसे अदालत जाने का भी अधिकार नहीं था। नागरिकों की स्वतंत्रता को कुचल दिया गया।

मीसा (MISA) का दुरुपयोग: 'मेंटेनेंस ऑफ इंटरनल सिक्योरिटी एक्ट' (MISA) नामक कठोर कानून का इस्तेमाल राजनीतिक विरोधियों को ठिकाने लगाने के लिए एक हथियार के रूप में किया गया। इस कानून के तहत एक लाख से अधिक लोगों को, जिनमें विपक्षी नेता, कार्यकर्ता, छात्र और पत्रकार शामिल थे, बिना मुकदमा चलाए जेलों में ठूंस दिया गया। जेलों में ठूंसे गए देशभक्तों की आहें आज भी उस क्रूरता की गवाही देती हैं।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर प्रहार: सरकार ने न्यायपालिका को अपने अधीन करने की भरपूर कोशिश की। कुख्यात एडीएम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक बेहद विवादास्पद फैसला सुनाते हुए कहा कि आपातकाल के दौरान नागरिकों को जीवन के अधिकार की मांग करने का कोई हक नहीं है । यह फैसला न्यायपालिका के इतिहास पर एक अमिट धब्बा माना जाता है। न्याय के मंदिर को भी सत्ता के चरणों में झुकाने का प्रयास किया गया।

संजय गांधी का असंवैधानिक उदय: इस दौरान प्रधानमंत्री के छोटे बेटे संजय गांधी एक 'अतिरिक्त-संवैधानिक सत्ता केंद्र' के रूप में उभरे। उनके नेतृत्व में जबरन नसबंदी का एक क्रूर अभियान चलाया गया,

जिसका उद्देश्य जनसंख्या नियंत्रण था, लेकिन यह गरीबों और कमजोरों पर अत्याचार का पर्याय बन गया। दिल्ली के तुर्कमान गेट जैसे इलाकों में झुग्गियों को जबरदस्ती हटाने की कार्रवाई ने हजारों लोगों को बेघर कर दिया। मानवीय गरिमा को तार-तार कर दिया गया।

प्रेस की स्वतंत्रता की हत्या: सेंसरशिप का तांडव

आपातकाल का सबसे पहला और सबसे क्रूर हमला प्रेस की स्वतंत्रता पर हुआ। 25-26 जून की रात को ही दिल्ली के बहादुर शाह जफर मार्ग स्थित प्रमुख अखबारों के दफ्तरों की बिजली काट दी गई, ताकि वे आपातकाल की खबर न छाप सकें। अगले दिन से ही पूरे देश में कठोर सेंसरशिप लागू कर दी गई।

प्री-सेंसरशिप: हर समाचार, लेख और तस्वीर को छपने से पहले सरकारी सेंसर अधिकारियों से मंजूरी लेनी पड़ती थी। सरकार की आलोचना करने वाली किसी भी खबर पर पूरी तरह से पाबंदी थी।

पत्रकारों की गिरफ्तारीः सैकड़ों पत्रकारों को मीसा के तहत गिरफ्तार किया गया। कई समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को बंद करने पर मजबूर कर दिया गया। कलम की स्वतंत्रता को जंजीरों में जकड़ दिया गया।

विरोध के प्रतीक: इस दमन के बावजूद, कुछ साहसी पत्रकारों और अखबारों ने प्रतिरोध का झंडा बुलंद रखा। इंडियन एक्सप्रेस और द स्टेट्समैन जैसे अखबारों ने संपादकीय की जगह खाली छोड़कर सेंसरशिप का विरोध किया। भूमिगत साहित्य और समाचार पत्रिकाओं ने लोगों तक सच्चाई पहुंचाने का काम किया, जिन्हें गुप्त रूप से बांटा जाता था। लालकृष्ण आडवाणी जी ने बाद में इस दौर का वर्णन करते हुए कहा था, "जब प्रेस को सिर्फ झुकने के लिए कहा गया, तो वह रेंगने लगी।"

लोकतंत्र की मशाल और जनमानस का प्रतिरोध

जब लोकतंत्र का गला घोंटा जा रहा था, तब जनसंघ और अन्य विपक्षी दलों के नेताओं ने भूमिगत होकर या जेलों के अंदर से लोकतंत्र की बहाली के लिए एक जबरदस्त संघर्ष छेड़ा।

लोक संघर्ष समिति का गठन: इस कठिन समय में 'लोक संघर्ष समिति' का गठन हुआ, जिसमें जनसंघ और विपक्षी दल शामिल थे। इस समिति ने आपातकाल के खिलाफ राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह और जनजागरण का आयोजन किया।

जनसंघ की भूमिका: जनसंघ के कैडर-आधारित संगठन ने इस प्रतिरोध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अटल बिहारी वाजपेयी जी , लालकृष्ण आडवाणी जी और नानाजी देशमुख जी जैसे शीर्ष नेताओं को आपातकाल लगते ही गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन जमीनी स्तर पर हजारों कार्यकर्ताओं ने भूमिगत नेटवर्क स्थापित किया। उन्होंने सरकारी दमन के खिलाफ पोस्टर छापे, पर्चे बांटे, गुप्त बैठकें आयोजित कीं और जेल में बंद नेताओं के परिवारों की मदद की। यह नेटवर्क लोकतंत्र की लौ को जलाए रखने में सफल रहा।

जन-क्रांति का आह्वान: इस आंदोलन का वैचारिक आधार जनता के बीच से उठा, जिसने भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और सत्ता के केंद्रीकरण के खिलाफ एक सशक्त आह्वान किया। इसने लाखों छात्रों, युवाओं और आम नागरिकों को लोकतंत्र की रक्षा के लिए प्रेरित किया। यह सिर्फ एक राजनीतिक आंदोलन नहीं, बल्कि एक नैतिक और वैचारिक जागरण था, जिसने लोगों को तानाशाही के खिलाफ खड़े होने का साहस दिया।

आपातकाल का अंत और लोकतंत्र की विजय

जनवरी 1977 में इंदिरा गांधी ने अचानक लोकसभा चुनाव कराने की घोषणा कर दी। शायद उन्हें खुफिया एजेंसियों ने यह विश्वास दिलाया था कि जनता उनके 'अनुशासन पर्व' से खुश है और वह आसानी से चुनाव जीत जाएंगी। यह उनकी सबसे बड़ी राजनीतिक भूल साबित हुई। जेल से रिहा होते ही सभी प्रमुख विपक्षी नेताओं ने एकजुट होकर 'जनता पार्टी' का गठन किया, जिसमें जनसंघ एक प्रमुख घटक था। चुनाव का पूरा अभियान 'लोकतंत्र बनाम तानाशाही' के मुद्दे पर लड़ा गया। जनता ने आपातकाल के दौरान हुए अत्याचारों का बदला अपने वोट से लिया।

मार्च 1977 के चुनाव परिणामों ने इतिहास रच दिया। इंदिरा गांधी और उनके बेटे संजय गांधी दोनों चुनाव हार गए। कांग्रेस पार्टी की शर्मनाक हार हुई और केंद्र में पहली बार एक गैर-कांग्रेसी सरकार, जनता पार्टी की सरकार बनी, जिसके प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई बने। यह भारत के जनमानस की विजय थी, जिसने सत्ता के अहंकार को ध्वस्त कर दिया।

आपातकाल – एक कड़वा सबक और शाश्वत चेतावनी

भारतीय आपातकाल का 21 महीने लंबा दौर निस्संदेह भारतीय लोकतंत्र पर एक बदनुमा दाग है। यह एक कटु सत्य है कि कैसे एक व्यक्ति की सत्ता की लालसा पूरे देश को तानाशाही के अंधेरे कुएं में धकेल सकती है। इसने दिखाया कि संवैधानिक प्रावधानों का दुरुपयोग करके कैसे मौलिक अधिकारों और प्रेस की स्वतंत्रता को कुचला जा सकता है।

लेकिन यह दौर भारतीय लोकतंत्र की जीवटता का प्रमाण भी है। यह उन अनगिनत गुमनाम नायकों के अदम्य साहस और आम भारतीय नागरिक की लोकतांत्रिक आत्मा की विजय की कहानी भी है। आपातकाल ने देश को सिखाया कि लोकतंत्र को कभी भी हल्के में नहीं लिया जा सकता और इसकी रक्षा के लिए निरंतर सतर्कता आवश्यक है। यह आज भी एक चेतावनी है कि सत्ता का केंद्रीकरण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन किसी भी राष्ट्र के लिए कितना घातक हो सकता है। यह हमें उन अनगिनत बलिदानों की भी याद दिलाता है, जिन्होंने जेलों में यातनाएं सहकर और अपना सब कुछ दांव पर लगाकर भारत में लोकतंत्र को पुनर्स्थापित किया।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने भी संसद में आपातकाल का उल्लेख करते हुए इसे भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण क्षण बताया है। उन्होंने कहा कि यह घटना हमें हमेशा सचेत रहने की याद दिलाती है ताकि भविष्य में ऐसी स्थितियाँ दोबारा न आएं, जहाँ लोकतांत्रिक सिद्धांतों का हनन हो।

आपातकाल भले ही दो वर्षों तक रहा हो, पर उसका सबक आज भी प्रासंगिक है। आपातकाल का दौर जिसमें भीषण अंधेरा था, पर अंततः जनता की मशालों ने उजाला कर दिया। हम भारतीयों के लिए, लोकतंत्र के प्रति हमारी अटूट निष्ठा ही हमारी सबसे बड़ी ताकत है. यह वो आधारशिला है जिस पर हमारा राष्ट्र टिका हुआ है. हमें उन सभी के बलिदान को हमेशा याद रखना चाहिए जिन्होंने हमारे लोकतंत्र की रक्षा के लिए संघर्ष किया है। यह सुनिश्चित करना हमारा कर्तव्य है कि 25 जून जैसे दिन, जब हमारे संविधान को कुचलने का प्रयास किया गया था, वे इतिहास के पन्नों में सिर्फ एक चेतावनी बनकर रहें, और उनकी पुनरावृत्ति कभी न हो ।

आपातकाल 1975: भारतीय लोकतंत्र की अग्निपरीक्षा और जनचेतना का पुनर्जागरण

डॉ शैलेन्द्र शुक्ला
रिसर्च फेलो, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन

25 जून 1975 का दिन भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक ऐसा मोड़ साबित हुआ, जब देश ने संविधान की आत्मा, नागरिक अधिकारों और संस्थागत स्वायत्तता पर अभूतपूर्व प्रहार का साक्षी बना। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा घोषित आपातकाल न केवल एक राजनीतिक घोषणा थी, बल्कि यह राष्ट्र के संवैधानिक ढांचे, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, न्यायपालिका की निष्पक्षता और नागरिक समाज की चेतना के समक्ष एक कठोर परीक्षा भी सिद्ध हुआ।

राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि: समग्र क्रांति की लहर

1970 के दशक का भारत भीषण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों से जूझ रहा था। बढ़ती बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महंगाई, प्रशासनिक अकुशलता और शासनतंत्र की निष्ठुरता ने जनता को व्यथित कर दिया था। ऐसे समय में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने 'समग्र क्रांति' का आह्वान किया, जिसने देश के युवाओं, छात्रों, श्रमिकों और बुद्धिजीवियों को नई चेतना प्रदान की। यह आंदोलन कोई सीमित क्षेत्रीय उभार नहीं था, बल्कि यह राष्ट्रव्यापी जनाक्रोश का रूप ले चुका था।

इस जनांदोलन को वैचारिक और संगठनात्मक समर्थन प्रदान करने वालों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS), जनसंघ, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और कई सामाजिक संगठनों की प्रमुख भूमिका रही। आंदोलन के व्यापक प्रसार से केंद्र सरकार की सत्ता में बेचैनी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगी थी।

न्यायपालिका का निर्णय और सत्ता की प्रतिक्रिया

12 जून 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया, जिसमें इंदिरा गांधी को चुनावी अनियमितताओं के दोषी ठहराते हुए छह वर्षों तक किसी भी सार्वजनिक पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। यह निर्णय न केवल उनकी व्यक्तिगत राजनीतिक स्थिति पर प्रश्नचिह्न था, बल्कि सत्ता के केंद्रीय ढांचे को भी हिला देने वाला था।

न्यायिक फैसले का सम्मान करने के बजाय, इंदिरा गांधी ने सत्ता-संरक्षण की मानसिकता में संविधान की मूल भावना को अनदेखा करते हुए 25 जून 1975 की रात देशभर में आपातकाल लागू कर दिया।

आपातकाल का अंधकार: संवैधानिक अधिकारों का हनन

आपातकाल की घोषणा के साथ ही भारतीय लोकतंत्र पर घना अंधकार छा गया। नागरिकों के मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए गए, मीडिया पर कठोर सेंसरशिप लागू कर दी गई, और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को शासन की छाया में ला दिया गया। संसद को केवल अनुमोदन की मुहर तक सीमित कर दिया गया। विरोधी नेताओं, पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और यहां तक कि असहमति जताने वाले आम नागरिकों को भी जेलों में डाल दिया गया।

मीसा (MISA) और डीआईआर जैसे कठोर कानूनों के तहत हजारों लोगों को बिना मुकदमा चलाए हिरासत में रखा गया। इस दौर में भय और दमन का ऐसा माहौल था, जिसमें असहमति ही अपराध बन गई थी।

संघ का भूमिगत प्रतिरोध: साहस, संगठन और सेवा

जब अधिकांश विपक्षी दल और संगठन या तो तितर-बितर हो गए या दमन के आगे झुक गए, तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उन चंद संगठनों में शामिल था, जिसने प्रतिरोध का बिगुल फूंका। संघ पर प्रतिबंध लगा दिया गया, हजारों स्वयंसेवक जेलों में ठूंस दिए गए, फिर भी उसका नेतृत्व भूमिगत रहकर लोकतंत्र की रक्षा के लिए सक्रिय रहा।

इस गुप्त संघर्ष की विशेषता थी — अनुशासन, त्याग और समर्पण। देशभर में संघ के कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह का आयोजन, गुप्त साहित्य का वितरण, जनमत निर्माण और बंदी परिवारों की सहायता का कार्य निर्भीकता से किया। इस आंदोलन का संचालन लगभग 1,356 प्रचारकों ने किया, जिनमें से केवल 189 ही पुलिस के हाथ आए — शेष भूमिगत रहकर राष्ट्रव्यापी जनचेतना जगाने में लगे रहे।

वैश्विक स्तर पर जागरूकता: विदेशों में प्रतिरोध की गूंज

आपातकाल के विरुद्ध आवाज़ केवल भारत तक सीमित नहीं रही। विदेशों में भी स्वयंसेवकों और प्रवासी भारतीयों ने 'Friends of India Society' और अन्य मंचों के माध्यम से लोकतंत्र की आवाज़ को वैश्विक स्तर तक पहुँचाया। भारत सरकार पर अंतरराष्ट्रीय दबाव बनाने में इन प्रयासों की निर्णायक भूमिका रही।

विपक्ष की एकता और लोकतंत्र की पुनर्स्थापना

1977 में जब इंदिरा गांधी ने चुनाव कराने की घोषणा की, तो उनका आकलन था कि बिखरा हुआ विपक्ष संगठित नहीं हो

सकेगा। लेकिन यह गणना गलत साबित हुई। संघ के वरिष्ठ प्रचारकों—जैसे प्रो. राजेन्द्र सिंह 'रज्जू भैय्या' और दत्तोपंत ठेंगड़ी—ने विभिन्न विपक्षी दलों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और 'जनता पार्टी' के रूप में एक समन्वित राजनीतिक मंच तैयार किया।

जनसंघ के स्वयंसेवकों ने न केवल प्रचार-प्रसार का दायित्व संभाला, बल्कि संगठनात्मक ढांचे की रीढ़ बनकर चुनावी संघर्ष को जनांदोलन का रूप दिया। परिणामस्वरूप कांग्रेस को ऐतिहासिक पराजय का सामना करना पड़ा और लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पुनःस्थापना हुई।

आदर्श सेवा का उदाहरणः सत्ता से विमुख, राष्ट्र को समर्पित

आपातकाल की समाप्ति के पश्चात, जहाँ अनेक राजनीतिक कार्यकर्ता सत्ता और पदों की ओर अग्रसर हो गए, वहीं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता पुनः शाखाओं में लौट गए। उनका लक्ष्य सत्ता प्राप्ति नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा और राष्ट्र निर्माण था। संघ की यह भूमिका 'निस्वार्थ सेवा' और 'राष्ट्र सर्वोपरि' की अवधारणा का मूर्त रूप बन गई।

प्रसिद्ध पत्रकार दीनानाथ मिश्र ने इस भूमिगत आंदोलन को 'पूर्णतः स्वदेशी संघर्ष' कहा, जिसमें न किसी विदेशी समर्थन की अपेक्षा थी और न ही किसी बाहरी नेतृत्व की आवश्यकता।

लोकतंत्र की रक्षा में संगठित नागरिक शक्ति का महत्त्व

1975 का आपातकाल भारतीय लोकतंत्र के लिए एक गंभीर चेतावनी था कि जब सत्ता निरंकुश हो जाती है, तो संविधान की रक्षा केवल न्यायपालिका या संसद नहीं, बल्कि सजग नागरिक समाज और संगठित वैचारिक चेतना ही कर सकती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने इस संघर्ष में केवल एक संगठन के रूप में नहीं, बल्कि लोकतंत्र के रक्षक और सांस्कृतिक चेतना के संवाहक के रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

इस संघर्ष की सबसे बड़ी सीख यही है कि जब राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखा जाए और त्याग एवं अनुशासन को जीवन का आधार बनाया जाए, तो अधिनायकवाद चाहे जितना भी शक्तिशाली हो, अंततः जनचेतना के सामने टिक नहीं सकता।

India's Darkest Hours: The Emergency and the Fight for Democracy

Abhas Verma

Author

The declaration of a State of Emergency in India on June 25, 1975, remains a somber chapter in the nation's democratic journey — a period that witnessed an unprecedented assault on fundamental rights and a profound crisis of governance. This article delves into the various facets of the Emergency, examining its motivations, instruments of suppression, the courage of those who resisted, and its lasting legacy on Indian democracy.

The Emergency was not a sudden impulse but the culmination of escalating political tensions and Prime Minister Indira Gandhi's increasingly authoritarian tendencies. Facing a formidable challenge from a united opposition — particularly after the Allahabad High Court's judgment on June 12, 1975, which found her guilty of electoral malpractice and disqualified her from Parliament — Gandhi opted for an extreme measure. The decision to impose the Emergency was made hastily and with minimal consultation, seemingly driven by a desperate desire to cling to power. This swift, unilateral act bypassed established democratic norms and processes, effectively suspending the Constitution and concentrating all power in the hands of the executive.

Critics contend that Indira Gandhi's primary motivation for imposing the Emergency was deeply personal and self-serving: to nullify the Allahabad High Court's verdict and avert political ruin. The narrative propagated by the government at the time — citing internal disturbances and threats to national security — largely failed to convince a populace that witnessed the rapid dismantling of democratic institutions. Her actions during this period reflected her belief that her leadership was indispensable, even if it meant sacrificing the very principles of democracy she was sworn to uphold. The Emergency, therefore, is often seen as a stark example of an individual prioritizing personal ambition above national interest.

At the heart of the Emergency's oppressive machinery was the Maintenance of Internal Security Act (MISA). This draconian law permitted preventive detention without charge or trial, effectively suspending the right to habeas corpus. Thousands of political opponents, activists, journalists, and dissenting voices were rounded up and incarcerated under MISA, often in secret and without any recourse. MISA became a chilling symbol of the government's arbitrary power, silencing dissent through fear and imprisonment. Its widespread misuse highlighted the fragility of individual liberties in the face of unchecked state authority.

The human cost of MISA and the Emergency was tragically exemplified by the case of Snehalata Reddy, a renowned Kannada actress and activist. Arrested under MISA, she was denied proper medical care in prison, leading to a severe deterioration of her health. She was eventually released on parole, only to die shortly thereafter due to her worsening condition. Snehalata Reddy's death became a poignant symbol of the brutality and inhumane treatment meted out to political prisoners during the Emergency, drawing widespread condemnation and exposing the dark underbelly of state repression.

Amidst the palpable fear and repression, one figure emerged as the moral compass of the nation: Jayaprakash Narayan, popularly known as JP. A veteran Gandhian and socialist, JP galvanized the opposition with his resonant call for "Total Revolution," advocating for fundamental change across political, social, and economic spheres. He became the defiant face of the anti-Emergency movement, inspiring countless individuals to resist the authoritarian regime. Despite his frail health and subsequent arrest, JP's unwavering commitment to democracy and civil liberties provided a much-needed beacon of hope and solidified his place as an icon of resistance.

The Emergency witnessed an unprecedented assault on the Indian Constitution. However, it also galvanized a remarkable generation of individuals who, through their courage and sacrifice, ultimately preserved the democratic fabric of the nation. This included countless student activists, lawyers, journalists, trade unionists, and ordinary citizens who defied censorship, protested the arrests, and worked tirelessly to expose the government's excesses. Their unwavering commitment

to constitutional values, often at great personal risk, ensured that the spirit of democracy was kept alive, eventually leading to the restoration of civil liberties and free elections.

One of the most immediate and visible casualties of the Emergency was the freedom of the press. Censors were appointed to vet all news reports, editorials, and even advertisements before publication. Critical voices were stifled, and newspapers were compelled to carry government propaganda. Electricity supply to newspaper offices was severed, and journalists who dared to defy censorship faced arrest and harassment. This systematic suppression of information created an atmosphere of fear and misinformation, preventing the public from knowing the true extent of the repression and the resistance.

While often overlooked in mainstream narratives, the Rastriya Swayamsevak Sangh (RSS) and its allied organizations played a significant role in resisting the Emergency. Despite being banned by the government, RSS cadres went underground, organizing protests, disseminating uncensored information, and providing support to the families of political prisoners. Their highly disciplined network and cadre-based structure proved effective in maintaining a sustained opposition to the Emergency. Many prominent leaders associated with Hindutva bodies were imprisoned, and their activism during this period contributed to the broader anti-Emergency movement.

The eventual lifting of the Emergency in January 1977 and the subsequent general elections resulted in a resounding defeat for Indira Gandhi and the Congress Party. This outcome was a powerful affirmation of the Indian people's commitment to democracy and their unequivocal rejection of authoritarian rule. It was a clear verdict of "India vs. Indira," where the democratic aspirations of the nation triumphed over the personal ambitions of an individual. The elections served as a critical turning point, demonstrating the resilience of Indian democracy and the ultimate power of the electorate.

For many, the Emergency remains the greatest blunder in the history of independent India — a period that severely tested the foundations of its democracy. It exposed the vulnerabilities of constitutional checks and balances, the dangers of unchecked executive power, and the ease with which fundamental rights can be suspended. While some argue that it brought a temporary semblance of order and discipline, the long-term damage to democratic institutions, public trust, and individual liberties far outweighed any perceived short-term gains. It stands as a cautionary tale — a stark reminder of the eternal vigilance required to safeguard democratic freedoms.

While countless individuals contributed to the resistance against the Emergency, many who later became prominent figures in the Bhartiya Janata Party (BJP) played crucial roles, often as "unsung heroes." Leaders like Atal Bihari Vajpayee and L.K. Advani were among the first to be arrested and spent the entirety of the Emergency in prison. Their steadfast opposition to the authoritarian regime, their intellectual contributions to the anti-Emergency discourse, and their organizational efforts from behind bars were instrumental in sustaining the resistance.

Other notable BJP leaders and ideologues who were actively involved in opposing the Emergency include:

- **Nanaji Deshmukh —** A senior RSS ideologue who went underground and played a vital role in coordinating the resistance network.
- **K. Jana Krishnamurthi —** Another key RSS functionary who was imprisoned during the Emergency.
- **Sunder Singh Bhandari —** A prominent Jana Sangh leader who was also detained.
- **Arun Jaitley —** As a young student leader, he was a prominent figure in the Delhi University anti-Emergency movement and was arrested under MISA.
- **Narendra Modi —** As a young RSS Pracharak, he went underground and was involved in various activities to oppose the Emergency, including distributing leaflets and helping underground activists.

These individuals, along with countless others from various political and social backgrounds, represent the collective spirit of defiance that ultimately restored democracy to India. Their sacrifices and unwavering commitment to constitutional values ensured that the Emergency, despite its profound impact, remained a temporary aberration rather than a permanent feature of the Indian political landscape. Their stories serve as a powerful reminder of the enduring strength of democratic ideals and the courage required to defend them.

क्रूरकाल की करतूतों का काला चिट्ठा

इंदुशेखर तत्पुरुष

पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान साहित्य अकादमी

संघर्षों की भट्ठी में तपे हुए समग्र क्रांति के महानायक की महारैली से उठी आक्रोशित जनता की हुंकार एक दिन महारानी के सिंहासन की चूलें हिला देती है। आततताइयों द्वारा सताई गई जनता के सुलगते हृदयों का धुआँ एक दिन राजमहल के कंगूरों की स्वर्णाभा पर कालिख पोत देता है।

मंच से उठती है ललकार — एक राष्ट्रकवि का सिंहनाद — "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है"... और दहल उठती है निरंकुश सत्ता की गर्वाच्छादित छाती। बार-बार गरज उठती थी देशभर के देशभक्त विद्यार्थियों की तरुण शक्ति, जिसे सुनकर डोलने लगी थी दिल्ली की दंभी सत्ता।

इतनी हलचल, इतनी घबराहट — भय की आहट इतनी कि जनता की जय पताका के चीथड़े तार-तार होकर हवा में उड़ा दिए गए। जनसभा समाप्त होते-होते, लोगों के घर पहुँचने के पहले ही पहुँच चुकी थी पुलिस; उनके घरों को छानती-घेरती। सभास्थल पर बिछाई गई कुर्सियाँ, दरियाँ, शामियाना उठने से पहले ही उठ चुकी थी लोकतंत्र की चादर।

अचानक वज्रपात हुआ था दिल्ली के आकाश पर, जैसे फट पड़ता बादल गरीब-गुरबों के गाँव पर, जैसे फिरता बुलडोजर मजदूरों की कच्ची बस्ती पर। कड़क कर टूटती बिजली जैसे किसी वृक्ष पर, उसे झुलसाकर निष्पत्र कर देती, पक्षियों के घोंसलों को राख कर देती। पलक झपकते ही संगीनें सारी दिशाओं को, हवाओं को, उनमें बहने वाली साँसों को, उनमें पलने वाले स्वप्नों को, नींद को और जाग को घेर लेतीं।

आधी रात का अंधेरा घोड़े पर सवार होकर जन-जन को सूँघता, फुसफुसाता, डोलता। विधि को विधवा कर विधान से बलात्कार करता। उसके चरमराते बूटों की लयबद्ध आवाज़ें और संविधान का चीत्कार रातभर कानों में गूँजते रहते। सड़कें सुबह रक्त से धुली हुई मिलतीं। चौराहे चुप। गलियाँ सूनी, निस्तब्ध, भयभीत सी। काराएँ क्रांतिकारियों से भरी हुईं। अस्पताल नसबंदी के लिए पकड़े गए बंधकों से भरे रहते।

क्रूरकर्मा महारानी के फरमान से लोकतंत्र के प्रहरी, बहत्तर वर्षीय बूढ़े अहिंसक लोकनायक जयप्रकाश और उनके साथ कदम मिलाते देशभक्त बलिदानी नौजवान सींखचों के पीछे गहरे अंधेरे में डाल दिए गए। जनता की अन्यायमुक्ति के स्वप्नदृष्टा लोकनायक के दोनों गुर्दे लोकतंत्र के हत्यारों द्वारा कुचल दिए गए।

उसी काल में संविधान को भी सौंदर्यीकरण के नाम पर कुचल दिया गया। अपनी कुत्सित करतूतों के लिए कुख्यात एक जिद्दी राजकुमार ने सत्ता छिन जाने से भयभीत महारानी को बाध्य कर दिया कि वह संविधान को रौंद डाले।

सत्ता की शक्ति में पलती-मचलती-मदमाती, कुर्सी की अतृप्त प्यास से नाभिनालबद्ध महारानी ने आधी रात को संविधान के मंदिर को घेर कर कब्जा कर लिया। उसके क्रीतदास लठैतों ने दिन-दहाड़े शासन के हाथ-पैर बाँध दिए ताकि वे उसकी तीनों

कन्याओं का निर्विरोध अपहरण कर सकें — अपने उस युवराज के लिए, जिसकी गंदी नजरें इन जवान कन्याओं पर पहले से थीं।

उसी घर में एक चौथी कन्या "प्रेस" भी थी, जो तंत्र की औरस पुत्री तो नहीं, पर कोखजायी कन्याओं से कुछ कम भी नहीं थी। जिसके सामने कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका — ये तीनों कन्याएँ भी संकोच करती थीं। अब वे चारों की चारों युवराज के कब्जे में थीं। युवराज प्रसन्न थे। युवराज प्रसन्न तो महारानी परम प्रसन्न। महारानी प्रसन्न तो चाटुकार नाचते थे। चापलूस पुंगी बजाते थे। चमचे उछल-उछल कर कोर्निश बजाते थे।

इसी उल्लास के बीच उन्होंने अपहृत संविधान की गर्दन पर गुप्त जंजीर बाँधने के कुटिल इरादे से उसके गले में बयालीसवीं माला डालने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उनके पूर्वजों का भी इतिहास रहा था — जब मन होता, संविधान के कंठ में संशोधन की माला डाल देते। और इस तरह इकतालीस बार पूर्व में भी संशोधन-संस्कार हो चुका था।

सन् 1976 के एक ऐसे ही उद्विग्न दिवस पर, जब धर्मचक्र को कुचल रहा था दमनचक्र देश में; प्रतिपक्ष सारा कारागार में था; बाकी बचे हुए करबद्ध, मस्तक नत कतार में खड़े थे; "इंदिरा इज़ इंडिया, इंडिया इज़ इंदिरा" का मंत्रजाप करते फिरते थे चाटुकार। काली आँधी ने सफेद साड़ी ओढ़ कर संसद को घनघोर घटाटोप से ढँक लिया। घने अंधकार की ओट में संविधान के माथे पर अपना धारदार एजेंडा घोंप दिया गया।

संविधान के इस शल्य-श्रृंगार में विशेष दो विदेशी प्रजाति के फूल टाँक दिए गए। जिनकी गंध भीनी-भीनी और आकर्षक किंतु रस जहरीला था। दिखने में रंगीन और उत्तेजक, किंतु आत्मघाती — वे लोकलुभावन "सेक्यूलर", "सोशलिज़्म" नामधारी फूल, जो भारत की अंतरात्मा के प्रतिकूल थे।

राजेंद्र प्रसाद, नेहरू, अंबेडकर, पटेल जैसे दिग्गजों ने जिन विदेशी फूलों को भारत की जयमाला में पिरोना अनुचित समझा था, उन्हीं विषैले पुष्पों को संशोधन की इस बयालीसवीं माला में ठूँस दिया गया। भारतीय जलवायु के प्रतिकूल इन विदेशी पुष्पों को संविधान निर्माताओं ने सन् 1949 में ही ठुकरा दिया था। अन्यथा इन्हें शामिल करने के प्रस्तावक तब भी कम न थे।

संविधान की मार्गदर्शिका में जबरन ठूँस दिए गए दो अवांछित शब्द। धर्म के बिना राजनीति को जो पाप समझता था और कहता था — "धर्म से पृथक् राजनीति तो मृत्यु का जाल है" — वह गांधी अब किसी लोक से टप-टप रोता होगा। गांधी के नाम पर धंधा करने वालों ने उसकी आत्मा को कुचल कर उसमें "सेक्यूलर" ठूँस दिया। उसमें "सोशलिज़्म" ठूँस दिया। संविधान पर धर्मनिरपेक्षता का चोला चढ़ता देखकर "धम्मं शरणं गच्छामि" कहने वाला बाबा अंबेडकर भी धूर्तों की धूर्तता और मूढ़ों की मूढ़ता पर सर पीटते होंगे ।

क्रूर काल की कुत्सित करतूतों का यह काला चिट्ठा कभी बाँचते, कभी छुपाते, कभी गालियाँ देते, कभी तालियाँ पीटते हुए — पच्चीस जून की अर्धरात्रि को आधी सदी बीतने पर भी हम भारत के लोग अस्थिर मन और विचलित चित्त लिए याद करते हैं।

आपातकाल:लोकतन्त्र की हत्या का वीभत्स दौर

कृष्ण मुरारी त्रिपाठी अटल

साहित्यकार, स्तम्भकार एवं पत्रकार

आपातकाल एक ऐसी त्रासद और वीभत्स दास्तां जब देश को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने बंधक बना लिया। 21 महीने का एक ऐसा क्रूर और बर्बर आतंक का कालखंड जब पीएम इंदिरा गांधी ने संविधान को अपने कारागार में क़ैद कर दिया। भारत के महान लोकतन्त्र की शनैःशनैः हत्या की जाने लगी। ये वो दौर था जब - इंदिरा गांधी सरकार के विरोध में उठने वाली किसी आवाज़ को बंद कर देने की घोषणा हो चुकी थी। संविधान, कानून, अधिकार सबकुछ इंदिरा गांधी और उनके पालित सियासी गुंडों के हाथों की कठपुतली हो गए थे। जब चाहे जिसे चाहे उसे 'मीसा' के तहत जेल में डालने और उस पर नृशंस अत्याचार करने की खुली छूट थी। पूरा देश गांधी खानदान के लिए चारागाह बन चुका था। इसके पीछे की सबसे बड़ी वजह था इलाहाबाद हाईकोर्ट का 12 जून 1975 का वो आदेश जिसके अंतर्गत प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी कि निर्वाचन रद्द कर दिया गया था। इलाहाबाद हाईकोर्ट के जस्टिस जगमोहन लाल सिन्हा ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के विरुद्ध समाजवादी नेता राजनारायण की याचिका स्वीकार की।इसके बाद मामले की सुनवाई करते हुए इंदिरा का चुनाव रद्द कर दिया और उन्हें 6 साल के लिए अयोग्य घोषित कर दिया था। वहीं लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व में चल रहा 'संपूर्ण क्रांति' का आंदोलन भी अपने उफान पर था। जेपी के नेतृत्व में इंदिरा गांधी सरकार के खिलाफ चल रहा आंदोलन दिनों दिन आक्रामक होने लगा। एक ओर इलाहाबाद हाईकोर्ट के आदेश और दूसरी ओर जेपी की संपूर्ण क्रांति से इंदिरा गांधी घबरा गईं। उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। ऐसे में इसके विरुद्ध कांग्रेस ने 20 जून, 1975 के दिन एक विशाल रैली का आयोजन किया। इस रैली में कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने कहा था— "इंदिरा तेरी सुबह की जय, तेरी शाम की जय, तेरे काम की जय, तेरे नाम की जय" साथ ही इसी जनसभा में अपने भाषण के दौरान इंदिरा गांधी ने घोषणा की कि वे प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र नहीं देंगी।

अर्थात् प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सुस्पष्ट कर दिया था कि वो संविधान और कानून का पालन नहीं करेंगी। उनके लिए न्यायालय का आदेश कोई मायने नहीं रखता। अब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी उस पटकथा को पर्दे में उतारने में लग गईं थी जो 'आपातकाल की त्रासदी' बनकर उभरा।

इधर 25 जून,1975 को लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने रामलीला मैदान पर विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा था कि— "सब विरोधी पक्षों को देश के हित के लिए एकजुट हो जाना चाहिए अन्यथा यहाँ तानाशाही स्थापित होगी और जनता दुखी हो जायेगी।" उसी दौरान लोक संघर्ष समिति के सचिव नानाजी देशमुख ने वहीं पर उत्साह के साथ घोषणा कर दी— "इसके बाद इंदिरा जी के त्यागपत्र की मांग लेकर गाँव-गाँव में सभाएं की जाएंगी और राष्ट्रपति के निवास स्थान के सामने 29 जून से प्रतिदिन सत्याग्रह होगा।" उसी संध्या को जब रामलीला मैदान की विशाल जनसभा से हजारों लोग लौट रहे थे, तब प्रत्येक धूलिकण से मानो यही मांग उठ रही थी कि- "प्रधानमंत्री त्यागपत्र दें और वास्तविक गणतंत्र की परम्परा का पालन करें।" (पी.जी. सहस्त्रबुद्धे, मानिकचंद्र वाजपेयी, आपातकालीन संघर्ष-गाथा (1975-1977), पृष्ठ 1)

लेकिन इसके बाद सत्याग्रह का कोई अवसर ही नहीं आ पाया। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 25 जून 1975 की अर्द्ध रात्रि को ही आपातकाल घोषित कर दिया।इसी के साथ शुरू हो गया देश को खुली जेल में बदलने का वीभत्स खेल।देश की न्यायपालिका के हाथ-पांव बांध दिए गए। समूचे विपक्ष और जनता को सलाखों के पीछे भेजने का क्रम शुरू हो गया।प्रेस सेंसरशिप लगाकर पत्रकारिता की हत्या की जाने लगी।कोई प्रतिरोध में बोलता और लिखता तो उसके हिस्से जेल की सज़ा का फरमान जारी हो जाता। जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, मोरारजी देसाई, जॉर्ज फर्नांडीस, जयपुर की महारानी गायत्री देवी, राजमाता विजयाराजे सिंधिया समेत समूचे विपक्षी नेताओं को क्रमशः गिरफ्तार कर जेल भेजा जाने लगा। 30 जून 1975 को सरसंघचालक बाला साहेब देवरस को नागपुर स्टेशन में गिरफ्तार कर पुणे की यरवदा जेल में कैद कर दिया गया। घबराई और बौखलाई प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 4 जुलाई 1975 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा दिया गया। सरकार युद्ध स्तर पर संघ के स्वयंसेवकों की गिरफ्तारी में जुट गई। इस प्रकार इंदिरा सरकार के विरोध में उठी हर आवाज़ को ख़ामोश करने के लिए जेलों में ठूंसा जाने लगा। नृशंस यातनाओं की बर्बरता कुछ इस क़दर थी कि- आपातकाल के भुक्तभोगी रहे लोगों के अनुभव सुन और पढ़कर आत्मा कांप जाए ।

कांग्रेस के उस स्वर्णिम तानाशाही हिटलरशाही दौर में लोकतन्त्र कैसा था ? उसे वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर ने 'इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी ' में दर्ज किया है— "प्रेस को कुचल दिया गया था। साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य', दैनिक 'तरुण भारत', और हिंदी मासिक पत्रिका 'राष्ट्रधर्म', जो जन संघ समूह के हिंदी प्रकाशन का हिस्सा थे ; को बंद कर दिया गया। बिना किसी सर्च वारंट या किसी सक्षम अधिकारी के आदेश के एक पुलिस पार्टी इन अखबारों के परिसर में दाखिल हुई, प्रेस के कर्मचारियों को धक्के मारकर बाहर निकाला और सारी पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद करने के लिए प्रेस पर ताला लगा दिया। इन अखबारों के प्रकाशक, राष्ट्रधर्म प्रकाशन को लखनऊ में वकील मिलना मुश्किल हो गया। वकील डरे हुए थे। जो तैयार होता, उसे भारत के रक्षा नियम के तहत गिरफ्तार कर लिया जाता था।" (इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी पृ.57 प्रभात प्रकाशन संस्करण 2020)

हालांकि ये आपातकाल से थोड़ा विषयांतर करने वाला विषय हो सकता है।लेकिन ये तथ्य और बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अक्सर कांग्रेस के नेता 'लोकतंत्र और संविधान' की दुहाई देते रहते हैं। महात्मा गांधी और बाबा साहेब अंबेडकर के नाम पर देश और समाज में वैमनस्य फैलाते रहते हैं। मीडिया और पत्रकारिता को लांछित करते रहते हैं। वो भी इसीलिए क्योंकि मीडिया 'नेहरु-गांधी खानदान' के मुताबिक़ नहीं चलता है। उनकी

अर्दली नहीं बजाता है। हालांकि इस मामले में नेहरू गांधी खानदान के पालित और पोषित पत्रकारों/ यूट्यूबर्स को खुली छूट है।बकायदे उनके लिए नेहरू गांधी एंड कंपनी की ओर से फंडिंग की व्यवस्था है।कांग्रेस शासित राज्यों में उनके लिए ऐशो-आराम और सरकारी पदों की बुलेट प्रूफ जैकेट तैयार है। लेकिन बाबा साहेब अंबेडकर और संविधान के साथ कांग्रेस ने कैसा व्यवहार किया था? इसके लिए हमें इतिहास की तारीखों के फ्लैशबैक में जाना पड़ेगा।अक्टूबर 1951 से फरवरी 1952 के मध्य देश का पहला निर्वाचन हुआ।

इस पहले आम निर्वाचन में बाबा साहेब अंबेडकर के खिलाफ उत्तरी मुंबई सीट से कांग्रेस ने नारायण काजरोलकर को चुनाव में उतारा। बाबा साहेब अंबेडकर को सुनियोजित ढंग से चुनाव हरवाया गया। क्योंकि पंडित नेहरू नहीं चाहते थे कि बाबा साहेब अंबेडकर जीतकर लोकसभा में आएं। हालांकि वो बंबई प्रांत से राज्यसभा के सदस्य जरूर बने। लेकिन बाबा साहेब अंबेडकर लोकसभा जाना चाहते थे। वो अपने अधूरे कार्यों को सदन के माध्यम से पूरा करना चाहते थे। इसीलिए 2 साल बाद यानी 1954 में एक बार फिर बाबा साहेब अंबेडकर महाराष्ट्र की 'भंडारा' सीट से उपचुनाव में उतरे। लेकिन यहां भी कांग्रेस ने उनके ख़िलाफ़ उम्मीदवार उतारा और बाबा साहेब अंबेडकर को हार का सामना करना पड़ा।साल 1956 में बाबा साहेब अंबेडकर की मृत्यु हो गई।यानी उनके जीते जी कांग्रेस ने उनका इस तरह सम्मान किया था कि- उन्हें किसी भी सूरत में चुनाव जीतने नहीं दिया। उन्हें इसलिए सदन में चुनकर नहीं जाने दिया गया ताकि उनकी प्रखर आवाज़ संसद में न गूंज सके। अन्यथा इसके सिवाय भला और क्या कारण हो सकता था? आख़िर बार-बार बाबा साहेब अंबेडकर के ख़िलाफ़ कांग्रेस का उम्मीदवार उतारने की पंडित नेहरू की क्या मजबूरी रही होगी? साफ है कि वो डॉक्टर अंबेडकर को पसंद नहीं करते थे और बाबा साहेब अंबेडकर उनके हिसाब से कभी नहीं चल सकते थे। जोकि पंडित नेहरू को मंजूर नहीं था। इसीलिए बाबा साहेब अंबेडकर के साथ इस ढंग का व्यवहार किया गया।

ऐसे में जब कांग्रेस के नेता संविधान, बाबा साहेब अंबेडकर और महात्मा गांधी का नाम लेते हैं। उनके नाम पर सियासी रोटियां सेंकने का प्रयास करते हैं तो लगता है कि- वे अपने गिरेबां में झांकना पसंद नहीं करते हैं। शायद उन्हें इस बात की याद नहीं आती होगी कि-उन्होंने संविधान और बाबा साहेब अंबेडकर के साथ क्या सुलूक किया है। ऐसे में कांग्रेस और उसके नेताओं के मुंह से संविधान और लोकतंत्र पर ज्ञान देना। कुछ ऐसा ही है जैसे ' नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज' को चली।

इसी प्रकार पंडित जवाहरलाल नेहरू ने महात्मा गांधी की किस ढंग से उनके जीते जी अवमानना की। ये समस्त तथ्य महात्मा गांधी के विविध पत्र व्यवहारों, उनके लेखन में उल्लेखित ही है।वहीं उनकी बेटी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल के दौरान महात्मा गांधी के आदर्शों, विचारों और उनके संस्थानों का क्या हश्र किया। उसे भी जानना नितांत आवश्यक है। किस्सा ये था कि-लोकतंत्र की हत्या में इंदिरा गांधी और कांग्रेस इस क़दर अंधीं हो गईं थी कि उन्होंने 'महात्मा गांधी' के नवजीवन ट्रस्ट को भी नहीं बख्शा था.। दरअसल उस वक्त बॉम्बे हाईकोर्ट के पूर्व जज वी.एम. तारकुंडे ने 'सिटिजन्स फॉर डेमोक्रेसी ' मंच का गठन किया। इसमें उन्होंने मौलिक अधिकारों को वापस करने को लेकर मांगे रखीं। आगे चलकर 12 अक्टूबर को 'सिटिजन्स फॉर डेमोक्रेसी ' का अहमदाबाद में एक सम्मेलन हुआ। इसमें बॉम्बे हाईकोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम.सी. छागला, सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जेसी शाह, वी.एम. तारकुंडे, मिनोओ मसानी सहित अन्य वकीलों ने अपने विचार रखे। इस सम्मेलन के उद्घाटन के दौरान जस्टिस छागला के भाषण को आधार बनाकर बड़ौदा के साप्ताहिक पत्र 'भूमि पुत्र' के प्रेस को सील कर दिया था। भूमिपुत्र के मामले को लेकर नवजीवन ट्रस्ट ने एक बुकलेट छापी जिसके चलते पुलिस ने प्रेस पर धावा बोला और सील कर दिया था। उस दौरान जस्टिस छागला ने जो कुछ कहा था वह कुलदीप नैयर ने 'इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी ' में लिखा — "आज जेल में बंद ज्यादातर लोगों को पता ही नहीं है कि वे वहाँ क्यों हैं और वे अपने बचाव नहीं कर सकते क्योंकि जहाँ कोई आरोप नहीं, वहाँ बचाव भी नहीं हो सकता है। वे किसी और अधिकरण के पास भी नहीं जा सकते, क्योंकि सब बंद पड़े हैं।"(इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी पृ.107 प्रभात प्रकाशन संस्करण 2020)

लेकिन इंदिरा गांधी अपनी तानाशाही के वीभत्स दौर की पराकाष्ठा पार कर रही थीं। उन्होंने महात्मा गांधी की विरासत का कैसे सम्मान किया था। उसे भी वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर ने दर्ज किया है —

" नवजीवन ट्रस्ट प्रेस, जहाँ से महात्मा गांधी अपने 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' का प्रकाशन कराते थे और अंग्रेजों के खिलाफ जंग लड़ रहे थे, ने धरती पुत्र के मामले पर एक बुकलेट छापी। पुलिस ने प्रेस पर धावा बोल दिया, उसे सील कर दिया और छह दिनों तक बंद रखा। प्रेस ने गुजरात हाई कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। कुछ समय बाद उसे यह कहा गया कि अगर नवजीवन अपनी सारी प्रकाशित होनेवाली सामग्री सेंसरशिप के लिए सौंप दे, तो सरकार उसके खिलाफ काररवाई नहीं करेगी। जीतेंद्र देसाई, जो प्रेस के मैनेजर थे, ने कहा कि आजाद भारत की सरकार ने उस संस्थान को सील कर दिया, जिसे महात्मा ने देश को आजादी दिलाने के लिए खड़ा किया था।" (इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी पृ.107 प्रभात प्रकाशन संस्करण 2020)

सोचिए...जिस कांग्रेस ने महात्मा गांधी की विरासत का ये हश्र किया रहा हो । उस कांग्रेस ने और सबके साथ क्या कुछ नहीं किया होगा? क्या गैंग्स ऑफ 'नेहरू गांधी खानदान' को आजाद भारत की ये क्रूर-वीभत्स-दमनात्मक त्रासदी याद नहीं आती होगी? वस्तुतः इंदिरा गांधी उसी रास्ते पर चल रहीं थी जिस रास्ते पर हिटलर था। इसे 'आपातकाल के आतंक' की वीभत्स दास्ताने ख़ुद सिद्ध करती हैं। संविधान और न्यायपालिका को लेकर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी क्या भाव रखती थीं? उस समय उनकी क्या मनोदशा थी? इस संबंध में

29 जुलाई, 1976 को उनका भारतीय कांग्रेस कमेटी के समक्ष दिया गया वक्तव्य उल्लेखनीय है — "यह संविधान नहीं है जो हमारे प्रगतिशील कदमों की बेड़ियाँ बन रहा है। यह तो न्यायपालिका है जो संविधान के प्रावधानों की व्याख्या कर बाधायें खड़ी कर रही है और हमे इसे परिवर्तित करना है।" कुछ महीनो बाद उन्होंने फिर अपना यही मत दुहराते हुए कहा, "संविधान की कई बार विकृत व्याख्या की जाती है। अतः संविधान की ही व्याख्या को असंदिग्ध बनाना आवश्यक है।"(मोहनलाल रुस्तगी,

आपातकालीन संघर्ष गाथा (संक्षिप्त जानकारी), पृष्ठ 18

एक ओर आपातकाल के दौरान इंदिरा गांधी अत्याचारों की पराकाष्ठा को पार कर रही थीं।जनजीवन बदहाल था। जबरदस्ती नसबंदी कराई जा रही थी। विपक्षी दलों और उनके नेताओं के साथ साथ विरोध में उठने वाली आवाज़ों को खामोश किया जा रहा था। वहीं दूसरी ओर आपातकाल के संकट को ख़त्म करने के लिए जनांदोलन तीव्रता पकड़ रहा था। आपातकाल के विरुद्ध लोक संघर्ष समिति की स्थापना हुई। नानाजी देशमुख समेत संघ के कई वरिष्ठ पदाधिकारियों और स्वयंसेवकों ने मोर्चा संभाला। राष्ट्रव्यापी ढंग से आपातकाल का प्रतिरोध शुरू हुआ। संघ के स्वयंसेवक अपने-अपने प्राण हथेली में रखकर लोकतन्त्र की रक्षा में जुट गए।इस आपातकाल विरोधी संघर्ष में 1 लाख से भी ज्यादा स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह किया और उन्हें जेल की यातना के क्रूर दौर से गुजरना पड़ा। 'मीसा' के अंतर्गत जो 30 हज़ार लोग बंदी बनाए गए थे। उनमें से 25 हज़ार से अधिक संघ के स्वयंसेवक थे। इतना ही नहीं लोकतंत्र की रक्षा करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 100 कार्यकर्ता अधिकांशतः जेल के अंदर और बाहर बलिदान हो गए।

उनमें संघ के अखिल भारतीय व्यवस्था प्रमुख श्री पांडुरंग क्षीरसागर भी थे। लेकिन संघ के स्वयंसेवकों ने इंदिरा गांधी सरकार के समक्ष घुटने नहीं टेके। संविधान के आदर्शों के साथ आपातकाल की त्रासदी को समाप्त करने में जुटे रहे।(संदर्भ : हो. वे. शेषाद्रि कृतिरुप संघ दर्शन, पृ.492)

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और गांधीवादी, समाजवादी नेता अच्युत पटवर्धन ने आरएसएस की आपातकाल के दौरान भूमिका पर इंडियन एक्सप्रेस समाचार पत्र में लिखा— "मुझे यह जानकार प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता राजनीतिक प्रतिरोध करनेवाले किसी भी अन्य समूह के साथ मिलकर, उत्साह और निष्ठा के साथ कार्य करने के लिए, तथा घोर दमन और झूठ का सहारा लेने वाले पैशाचिक शासन का जो कोई भी विरोध कर रहे हों, उनके साथ खुल कर सहयोग करने और साथ देने के लिए तैयार थे। जिस साहस और वीरता के साथ पुलिस के अत्याचारों और उसकी नृशंसता को झेलते हुए स्वयंसेवक आंदोलन चला रहे थे,उसे देखकर तो मार्क्सवादी संसद सदस्य – श्री ए के गोपालन भी भावकुल हो उठे थे। उन्होंने कहा था "कोई न कोई उच्चादर्श अवश्य है जो उन्हे ऐसे वीरोचित कार्य के लिए और त्याग के लिए अदम्य साहस प्रदान कर रहा है"। (संदर्भः इंडियन एक्सप्रेस 9 जून, 1979)

वहीं पूर्व जज एम.सी. सुब्रमण्यम ने लिखा— "जिन वर्गों ने निर्भीक लगन के साथ यह कार्य किया, उनमे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विशेषतः उल्लेखनीय है। उन्होने सत्याग्रह का आयोजन किया। अखिल भारतीय संचार तंत्र को बनाए रखा। आंदोलन के लिए चुपचाप धन एकत्र किया। बिना किसी विघ्न बाधा के साहित्य वितरण की व्यवस्था की। कारागार में अन्य दलों और मतों के संगी बंदियों को सहायता प्रदान की। इस प्रकार उन्होने सिद्ध कर दिया कि स्वामी विवेकानंद ने देश में सामाजिक और राजनीतिक कार्य के लिए जिस सन्यासी सेना का आवाहन किया था, उसके वो सबसे निकटतम पात्र हैं। वह एक परंपरावादी क्रांतिकारी शक्ति है।"

(संदर्भः इंडियन रिवियू - मद्रास, अप्रैल 1977)

जहां राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन आपातकाल के विरोध में सशक्त संघर्ष कर रहे थे। असंख्य कार्यकर्ता अपने जान की बाजी लगाकर सत्याग्रह, जन-जागरण में जुटे थे। उस समय कम्युनिस्टों ने एक बार फिर वैसा ही काम किया जैसे उन्होंने पाकिस्तान को बनाने के लिए किया था। राष्ट्र विरोधी कम्युनिस्टों ने अपना मूल चरित्र बारंबार दुहराया। चाहे 1962 में भारत-चीन युद्ध के दौरान चीन की रहनुमाई की हो। याकि आपातकाल की हो। कम्युनिस्ट हमेशा उस रास्ते में खड़े रहे जो भारत की मूल सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय चेतना के विरुद्ध रहा। जब आपातकाल में लोकतंत्र की हत्या की जा रही थी। उस समय कम्युनिस्ट आपातकाल में 'कम्युनिस्ट क्रांति' का सपना देख रहे थे। इस संदर्भ में ये तथ्य कम्युनिस्टों की लोकतंत्र भारत विरोधी सोच का पर्दाफाश करते हैं — "सीपीआई ने आपातकाल को एक अवसर के रूप में देखा और स्वागत किया। सीपीआई नेताओं का मानना था कि वे आपातकाल को कम्युनिस्ट क्रांति में बदल सकते थे। सीपीआई ने 11वीं भटिंडा कांग्रेस में इन्दिरा गांधी द्वारा थोपे गए आपातकाल का समर्थन किया था।"(Coalition Strategies and the Tactics of Indian Communism, P. 224)

अभिप्रायतः आपातकाल भारत के लोकतन्त्र पर एक ऐसा गहरा घाव है।जो कभी नहीं भर सकता है। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने केवल आपातकाल ही नहीं लगाया था। बल्कि उन्होंने ये सिद्ध करने का प्रयास किया था कि- ये देश नेहरू-गांधी खानदान की बपौती है। ऐसे में नेहरू-गांधी खानदान देश के संविधान और कानून से ऊपर आते हैं। इसीलिए उनके लिए न्यायालय के आदेश, लोकतान्त्रिक आवाजें कोई महत्व नहीं रखती हैं। यदि कुछ महत्व रखता है तो वो 'सत्ता' है। सत्ता के लिए नेहरू-गांधी एंड कंपनी किसी भी सीमा तक जा सकती है। चाहे संविधान को बंधक बनाने की बात हो। अथवा देश में वैमनस्य, भेदभाव और विभाजन की दीवार खड़ी कर राष्ट्र की एकता को खंडित करना हो।नेहरु-गांधी खानदान के वारिसों को जब भी अवसर मिला है। उन्होंने भारत के महान लोकतन्त्र, संविधान, महापुरुषों और आदर्शों पर आघात करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उपरोक्त उद्धृत और वर्णित तथ्य इन समस्त बातों की गवाही देते हैं।साथ ही आपातकाल के विरुद्ध संघर्ष करने वाली सज्जन शक्तियों ने ये सिद्ध कर दिया है कि— कोई भी राष्ट्र से बड़ा नहीं हो सकता है। चाहे संकट कितना भी विकट , क्रूर और भयावह हो जब समूचा राष्ट्र एकजुट होता है। संगठित तौर पर अपनी वाणी और कार्यों को धार देता है तो बड़े से बड़े पर्वत शिखर भी झुक जाते हैं।आपातकाल के विरोध में हुआ संघर्ष इसी अदम्य जिजीविषा और बलिदान का प्रतीक है। वो संघर्ष संविधान विरोधी और संविधान रक्षकों के बीच का संघर्ष था। एक ओर लोकतंत्र और संविधान की हत्या करने वाली सरकार थी तो दूसरी ओर भारत माता की संतानें; जिन्होंने विपरीत से विपरीत हालातों में धैर्य को नहीं खोया। निर्मम यातनाओं, अत्याचारों की असह्य वेदनाओं के बावजूद भी लोकतंत्र की पताका थामे रहे। मुखरता के साथ प्रतिकार किया और भारत माता की जयकार को पुनश्च साकार किया।

लोकतान्त्रिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की। इसीलिए आपातकाल का स्मरण करना अनिवार्य हो जाता है ताकि नई पीढ़ी संघर्षों को जान सके। साथ ही ये भी जान सके कि-हमारे महान पुरखों ने किन विपरीत परिस्थितियों में साहस और शौर्य का परिचय दिया।अपना सर्वस्व आहुत कर देश के संविधान की रक्षा की।

The Emergency and the Test of the Indian Judiciary

Adv. Tahir Majeed

Policy Analyst

Whenever we talk about the Emergency in India (1975–1977), we often recall the arrests of political leaders, censorship, and a sweeping suspension of civil liberties. But there was another battlefield where democracy was silently tested — our judiciary. As the guardian of the Constitution, the courts were expected to be the last line of defence against authoritarian overreach during that dark period; however, the judiciary faltered. It was a test of independence — and for the most part, it failed.

Long before the Emergency was declared, signs of a brewing conflict between the judiciary and the Indira Gandhi-led executive were evident. The central tension revolved around the balance of power — specifically, whether the judiciary could limit Parliament's authority. A turning point came with the Kesavananda Bharati v. State of Kerala (1973) case. The Supreme Court ruled, in a narrow 7–6 majority, that while Parliament could amend the Constitution under Article 368, it could not alter its "basic structure" — which included the rule of law, democracy, separation of powers, and fundamental rights. This judgment limited Parliament's authority and directly challenged the dominance of the executive.

In retaliation, the government altered the process of judicial appointments. The supersession of senior judges in 1973 — when Justice A.N. Ray was appointed Chief Justice of India over three more senior judges — was seen as an attempt to pack the judiciary with judges considered "committed" to the government's ideology. The confrontation escalated when Indira Gandhi's 1971 Lok Sabha election from Rae Bareli was invalidated by the Allahabad High Court on June 12, 1975. Justice Jagmohan Lal Sinha found her guilty of electoral malpractice under the Representation of the People Act. Ordered to vacate her seat and barred from contesting elections for six years, Gandhi faced a severe personal and political crisis. Just 13 days later, on June 25, 1975, the Emergency was declared under Article 352 of the Constitution, citing "internal disturbance." Civil liberties were suspended, the press was censored, and opposition leaders were jailed. The judiciary — already under pressure — was pushed into a corner.

The most infamous case of this period, and perhaps in Indian constitutional history, is ADM Jabalpur v. Shivkant Shukla (1976), commonly called the Habeas Corpus Case. The question before the Court was simple yet foundational: Could the right to life and liberty be suspended during an Emergency? And could a person who was detained unlawfully seek redress in court? The majority of the Supreme Court — Chief Justice A.N. Ray and Justices M.H. Beg, Y.V. Chandrachud, and P.N. Bhagwati — ruled 4–1 that during a national Emergency, even the right to seek habeas corpus under Article 226 was suspended. The government could detain anyone without any legitimate reason, and courts had no authority to intervene.

Only Justice Hans Raj Khanna dissented. In one of the most courageous judgments in Indian judicial history, he wrote: "Even in the absence of Article 21, the state has no power to deprive a person of his life or liberty without the authority of law." He argued that the right to life was inherent and inalienable, predating the Constitution itself. His principled stand cost him the Chief Justiceship. In 1977, Justice M.H. Beg — junior to Khanna — was appointed CJI, leading to Khanna's resignation. Today, Justice Khanna's dissent is revered as a moral beacon, a voice of conscience in a time of constitutional darkness.

A Judiciary Under Pressure: Submission and Silence

During the Emergency, Article 359 was used to suspend the enforcement of fundamental rights, particularly Articles 14, 19, 21, and 22. Thousands of political opponents and ordinary citizens were detained under draconian laws like the Maintenance of Internal Security Act (MISA), often without any formal charges. The judiciary, especially the higher courts, largely chose not to challenge the executive. While some High Courts initially upheld citizens' rights (as in the cases that prompted the ADM Jabalpur appeal), the Supreme Court ultimately sided with the

mighty state. Many legal scholars, including H.M. Seervai and Granville Austin, have termed this period the "constitutional breakdown" and the "darkest hour" of the Indian judiciary. Judicial independence — the cornerstone of democracy — was deeply compromised.

Justice Khanna's legacy became larger than the court he sat in. He knew his dissent would cost him dearly — and it did. But his courage was later recognised by both the Bar and the Bench. He was posthumously honoured with the Padma Vibhushan in 1999. The Supreme Court itself, in later years, acknowledged that the ADM Jabalpur verdict was wrongly decided, most notably in Justice D.Y. Chandrachud's opinion in the Puttaswamy (Right to Privacy) case in 2017, where he wrote: "The judgments rendered by all the four judges constituting the majority in ADM Jabalpur are seriously flawed. Life and personal liberty are inalienable rights. Neither the Constitution nor the State can extinguish them."

When the Emergency ended in March 1977 and the Janata Party came to power, a wave of judicial introspection followed. This self-correction led to the birth of Public Interest Litigation (PIL), which made justice more accessible to the poor, marginalised, and voiceless. Judges like Justice V.R. Krishna Iyer and Justice P.N. Bhagwati ushered in a new era of judicial activism. Ironically, Justice Bhagwati, who was part of the majority in ADM Jabalpur, later publicly expressed regret, calling the judgment a mistake and the "lowest point" of his career.

Constitutional Safeguards and the 44th Amendment (1978)

Perhaps the most significant legal response to the Emergency was the 44th Constitutional Amendment Act, passed in 1978. It aimed to undo many of the constitutional distortions brought in during the Emergency through the 42nd Amendment. Key features included:

- Article 21 (Right to Life and Personal Liberty) could not be suspended, even during an Emergency.
- Safeguards were added to prevent misuse of Emergency provisions.
- Article 359 was amended to limit the suspension of rights.
- The term "internal disturbance" in Article 352 was replaced with "armed rebellion" to prevent vague justifications for an Emergency.

These changes were critical in strengthening democratic resilience.

Lessons from a Judicial Crisis

The Emergency remains a case study in constitutional failure — but also in redemption. It reminds us that judicial independence is fragile and must be vigilantly protected. Dissent matters, and sometimes, one lone voice (like Justice Khanna's) can carry the weight of the Constitution. Institutions are only as strong as the integrity of those who inhabit them. Law schools, historians, and civil society continually revisit the Emergency not just to recount the past, but to remain vigilant in the present. The judiciary has grown stronger since then, but the lessons of those 21 months should never be forgotten. The Emergency tested every institution of Indian democracy, but none was tested as profoundly as the judiciary.

आपातकाल के अँधेरे को चुनौती देती लोकचेतना

पवन कुमार पाण्डेय

प्रांत मीडिया प्रमुख, अखिल भारतीय साहित्य परिषद जोधपुर प्रांत

आपातकाल के संदर्भ में प्रखर पत्रकार, संपादक, कवि राजनेता भारत रत्न पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की यह कविता बहुत कुछ कह देती है।

सत्य का संघर्ष सत्ता से, न्याय लड़ता निरंकुशता से
अंधेरे ने दी चुनौती है, किरण अंतिम अस्त होती है
दांव पर सब कुछ लगा है रुक नहीं सकते
टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते।

लेखन के प्रत्येक क्षेत्र में पत्रकारों, कलमकारों, कवियों, लेखकों के साथ ही उन सभी प्रकाशकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिन्होंने लिखित सामग्री को प्रकाशित कर पाठक के हाथ में पहुंचाने का कार्य किया। सटीक भाषा में अपनी सीधी बात को जनता के दिलों में घर करा देने वाले कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने आपातकाल के समय में तय कर लिया था कि वह सुबह, दोपहर, शाम को कविताएं लिखेंगे। आपातकाल थोपने पर लिखी कविताएं उस समय जनता की जुबान पर घर कर गई थीं।

बहुत नहीं थे, सिर्फ चार कौवे थे काले
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले
उनके ढंग से उड़ें, रुकें, खायें और गायें
वे जिसको त्यौहार कहें, सब उसे मनायें।।

सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आंदोलनों का समर्थन और साम्राज्यवादी नीतियों का विरोध करने में पत्रकारों एवं साहित्यकारों ने एक उत्प्रेरक ही नहीं, वरन् एक संदेशवाहक योद्धा की भांति कार्य को अंजाम दिया। उस समय में पत्रकारिता त्याग, बलिदान, देशभक्ति के साथ-साथ सामाजिक उन्नयन एवं उच्चतम राजनीतिक गतिविधियों से ओतप्रोत रही। मेंटेनेंस ऑफ इंटर्नल सिक्योरिटी एक्ट, जिसे हिन्दी में आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम कहा जाता है, के समय में पत्रकारों, साहित्यकारों पर बहुत से प्रतिबंध लगा दिए गए। लाखों पत्रकारों, साहित्यकारों को जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया गया। उस भयानक समय में भी वे कलमकारों को डिगा नहीं सके और उन्होंने ईमानदारी, समर्पण भाव से कार्य को संपादित किया। भारतीय जनमानस में चेतना की अलख जगाने में पत्रकारों, साहित्यकारों का बहुत बड़ा योगदान है। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में

कलम देश की बड़ी शक्ति है, भाव जगाने वाली
दिल ही नहीं दिमागों में भी , आग लगाने वाली।

जन साधारण तक सभी बातों व घटनाओं की जानकारी, उनके उद्देश्य, प्रभाव इत्यादि की सूचना पहुँचाने वाले लेखकों, पत्रकारों पर देश को सदैव गर्व रहेगा।

बाबू हरिकृष्ण जौहर की ये पंक्तियां देश के स्वतंत्रता संग्राम के समय में संपादकों और साहित्यकारों के लिए प्रेरणा स्रोत थीं।

कागज ओढ़ना और बिछाना, कागज से ही खाना ।
कागज लिखते-लिखते साधो, कागज में मिल जाना।।

पं. झाबरमल्ल शर्मा ने शब्दों की महिमा करते हुए लिखा है –

शब्द ओढ़ना, शब्द बिछाना, शब्दों का फल खाना ।
शब्द सोचकर अर्थ समझना, शब्दों में खो जाना।
शब्दों की ही माला जपना, शब्दों का ही ध्यान लगाना ।
शब्द ब्रह्म का चिंतन करके, भवसागर तर जाना।

संपादकों, पत्रकारों, साहित्यकारों ने शब्दों में ही जीवन जिया है। आपातकाल लागू करने का प्रमुख कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने समाचार पत्र को ही माना था। उन्होंने कहा कि समाचार पत्र ही जनता को भड़का कर भयावह स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। विपक्षी आंदोलन तो वास्तव में समाचार पत्रों में ही है, यदि इन पर सेंसर अर्थात कठोर संवाद नियंत्रण लगा दिया जाए तो कोई आंदोलन ही नहीं रहेगा। सांसद सरोज मुखर्जी को पत्र लिखकर कहा था कि प्रेस निराधार बातों को लेकर स्थिति बिगाड़ रहा है और अफवाहों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रकाशित कर रहा है। उसी समय विद्याचरण शुक्ल ने भी आपातकाल की घोषणा के उपरांत दिल्ली में संपादकों की प्रथम बैठक में धमकी देते हुए कहा कि अब सरकार व प्रेस के मध्य किसी प्रकार का टकराव सहन नहीं किया जाएगा। इसका सीधा-साधा अर्थ था कि समाचार पत्रों में किसी प्रकार की असहमति तथा विरोध प्रदर्शन को कोई स्थान नहीं रहेगा। निष्कर्ष यह निकलता है कि जनता को किसी प्रकार से सत्य की जानकारी न मिले कि देश में क्या हो रहा है। उस समय देश में भय का वातावरण हो गया था — जो बोलता था या जो भी लिखने का प्रयास करता, उसको सरेआम प्रताड़ित किया जा रहा था। हजारों लेखकों, पत्रकारों को जेल में डाल दिया गया, यातनाएँ दी गईं।

आपातकाल का विरोध गद्य-पद्य की विभिन्न विधाओं में भी प्रकट हुआ। आपातकाल के भयावह दौर को समझने में दो डायरियाँ प्रमुख स्थान रखती हैं।

जयप्रकाश नारायण ने 21 जुलाई, 1975 को जेल डायरी लिखना प्रारंभ किया और वे निरंतर चार नवंबर, 1975 तक लिखते रहे। कैद के दौरान उनके स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखा गया था। उन्होंने अपनी जेल डायरी 'कारावास की कहानी' में इसका संकेत दिया है। पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर की जेल डायरी में भी तब के दिनों का वर्णन है। आपातकाल के जो वृत्तांत उस

समय लिखे गये, वे साहित्य में उपलब्ध हैं और उस समय की सत्ता की ज्यादती और निरंकुशता का परिचय देते हैं। उस समय के साहित्य ने सत्ता की उस निरंकुशता का प्रतिरोध खुलकर किया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने जब आपातकाल की घोषणा की तो उन्हें संबोधित करते हुए नागार्जुन ने कविता लिखकर कुछ इस प्रकार कहा था।

क्या हुआ आपको? क्या हुआ आपको?
सत्ता की मस्ती में भूल गयी बाप को?
इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको?
बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को!
क्या हुआ आपको? क्या हुआ आपको?

देश में 25 जून, 1975 की रात आपातकाल लगाया गया था। इसके लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने जयप्रकाश नारायण के भाषण को ढाल बनाया था। 26 जून, 1975 को सुबह देश के नाम अपने संदेश में इंदिरा जी ने कहा था कि एक व्यक्ति सेना को विद्रोह के लिए भड़का रहा है। देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए यह ठीक नहीं। इसलिए देश में राष्ट्रपति जी ने आपातकाल लगा दिया है।

25 जून, 1975 को दिल्ली के रामलीला मैदान की रैली में जयप्रकाश नारायण जी ने इंदिरा गांधी से त्यागपत्र की मांग की थी। इस रैली में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कविता की पंक्तियाँ "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है" गुंजायमान थीं। देश के विभिन्न हिस्सों में चल रहे आंदोलन का नेतृत्व कर रहे जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति का नारा दिया था। उनके लिए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा था —

अब जयप्रकाश है नाम देश की आतुर, हठी जवानी का
कहते हैं उसको जयप्रकाश जो नहीं मरण से डरता है,
हां, जयप्रकाश है नाम समय की करवट का, अंगड़ाई का,
भूचाल, बवंडर के ख्वाबों से भरी हुई तरुणाई का
है जयप्रकाश वह नाम जिसे इतिहास समादर देता है,
बढ़ कर जिसके पदचिह्नों को उर पर अंकित कर लेता है।

भारत के उस भाग्यविधाता की पटना रैली में पुलिस लाठीचार्ज हुआ और अखबारों में रघु राय की एक तस्वीर छपी, जिसमें पुलिस जयप्रकाश नारायण पर लाठी ताने हुए थी। उस तस्वीर को देखकर धर्मवीर भारती ने "मुनादी" शीर्षक कविता लिखी थी। उसमें भारती ने कहा था —

खलक खुदा का, मुलुक बाश्शा का
हुकुम शहर कोतवाल का
हर खासो-आम को आगाह किया जाता है कि
खबरदार रहें
और अपने-अपने किवाड़ों को अंदर से
कुंडी चढ़ा कर बंद कर लें
गिरा लें खिड़कियों के परदे
और बच्चों को बाहर सड़क पर न भेजें, क्योंकि
एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी
अपनी कांपती कमजोर आवाज में
सड़कों पर सच बोलता हुआ निकल पड़ा है!

उसी बहत्तर साल के बूढ़े आदमी के लिए दुष्यंत कुमार ने लिखा थाः

एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो,
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।

दुष्यंत ने जिसे अंधेरी कोठरी का रोशनदान कहा था, उसी जयप्रकाश नारायण को इंदिरा जी ने 25 जून, 1975 को दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान से गिरफ्तार कराया और जेल की अंधेरी कोठरी में डाल दिया। चौधरी चरण सिंह, मोरारजी देसाई, राजनारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी और कांग्रेस कार्य समिति के तत्कालीन सदस्य चंद्रशेखर और रामधन सहित कई नेताओं को भी जेल में डाला गया था।

आपातकाल में जेल जाने पर अटल बिहारी वाजपेयी ने 'कैदी कविराय की कुंडलियां' शीर्षक कविता-पुस्तक लिख डाली। एक कुंडली में अटलजी ने कहा थाः

धरे गये क्यों रामधन, शेखर क्यों हैं बंद
मुझको समझाकर कहो मैं ठहरा मतिमंद

विनोबा भावे ने आपातकाल को जब अनुशासन पर्व कहा, तो इसी शीर्षक से अटलजी ने एक कुंडली में लिखा थाः

अनुशासन का पर्व है, बाबा का उपदेश
हवालात की हवा भी देती यह संदेश, राज डंडे से चलता
जब हज करने जाएं रोज कानून बदलता
कह कैदी कविराय शोर है अनुशासन का
लेकिन जोर दिखाई देता है दुःशासन का

इसी तरह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की पुस्तक '**आपातकाल में गुजरात**', मनोहर पुरी की पुस्तक 'आपातनामा' और नवल जायसवाल की पुस्तक **'दूसरी आज़ादी'** में सत्ता द्वारा हुई ज्यादतियों की कई घटनाओं का वर्णन मिलता है। इसके अलावा राही मासूम रज़ा के उपन्यास **'कटरा बी आर्ज़ू'**, गोपाल व्यास के उपन्यास **'सत्यमेव जयते'**, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' के उपन्यास **'प्रजाराम'**, निर्मल वर्मा की रचना **'रात का रिपोर्टर'** और श्रवण कुमार गोस्वामी द्वारा रचित **'जंगल तंत्र'** में लोकतंत्र के हनन का संपूर्ण यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। आपातकाल पर ही दीनानाथ मिश्र ने **'इमरजेंसी में गुप्त क्रांति'** पुस्तक में उस दौर में भूमिगत रहे पत्रकारों के प्रयासों और तत्कालीन घटनाओं को दर्ज किया।

अंग्रेज़ी में भी आपातकाल पर उपन्यास लिखे गए। सलमान रुश्दी ने **'मिडनाइट्स चिल्ड्रेन'** नामक उपन्यास में इमरजेंसी को 19 महीने लंबी रात बताया था। विनोद मेहता ने अपनी पुस्तक **'द संजय स्टोरी'** में उस दौर में की गई ज्यादतियों के

साथ-साथ मारुति कार प्रोजेक्ट और उसके घोटालों पर विस्तार से लिखा। पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने **'द ड्रामैटिक डिकेडः द इंदिरा गांधी इयर्स'** पुस्तक में लिखा कि आपातकाल को टाला जा सकता था।

श्रीधर दामले ने अपनी पुस्तक **'द ब्रदरहुड इन सैफ्रनः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एंड हिंदू रिवाइवलिज़्म'**, तपन बसु, प्रदीप दत्ता, सुमित सरकार, तनिका सरकार की पुस्तक **'खाकी शॉर्ट्स एंड सैफ्रन फ्लैग्स'**, कूमी कपूर की किताब **'द इमरजेंसीः अ पर्सनल हिस्ट्री'**, पी.एन. धर की पुस्तक **'इंदिरा गांधीः द इमरजेंसी एंड इंडियन डेमोक्रेसी'**, कुलदीप नैयर की पुस्तक **'इमरजेंसी रीटोल्ड'**, मीसा बंदियों द्वारा जेल में लिखी गई हस्तलिखित पुस्तक **'कालचक्र'**, ए. सूर्यप्रकाश की पुस्तक **'द इमरजेंसीः इंडियन डेमोक्रेसीज़ डार्केस्ट आवर'** से भी कई अनजाने तथ्यों का पता चलता है।

आपातकाल में मोरारजी देसाई, चंद्रशेखर, आचार्य कृपलानी, जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, मुलायम सिंह यादव, जॉर्ज फर्नांडीस, चौधरी चरण सिंह, लालू प्रसाद यादव सहित अनेक नेता प्रमुख थे। इंद्र कुमार गुजराल सरकार मीडिया को अपने अनुसार संभाल नहीं पाए, तो आपातकाल के प्रारंभिक दिनों में उन्हें बदलकर विद्याचरण शुक्ल को सूचना एवं प्रसारण मंत्री बनाया गया। प्रसिद्ध पत्रकार कुलदीप नैयर सहित हजारों पत्रकारों को पूरे आपातकाल के दौरान गिरफ्तार करवा दिया गया और कई पत्रकारों व कैमरामैन की सरकारी मान्यता निरस्त कर दी गई। एक अखबार ने सेंसरशिप की आँखों से बचकर शोक संदेश के कॉलम में प्रकाशित किया कि **'आज़ादी की माँ और स्वतंत्रता की बेटी लोकतंत्र की 26 जून, 1975 को मृत्यु हो गई।'** आपातकाल की ज्यादतियों के समाचार को विदेशी अखबारों में प्रकाशित होने से सरकार रोकने में असफल रही। इंदिरा गांधी विदेशी पत्रकारों से असंतुष्ट थीं। जनता विश्वसनीय समाचार के लिए आकाशवाणी के बजाय बीबीसी न्यूज़ पर भरोसा करने लगी थी। भारत में बीबीसी के प्रमुख संवाददाता मार्क टुली को 24 घंटे में देश छोड़ने के लिए बाध्य किया गया था। प्रतिष्ठित पत्रिका **'टाइम्स', 'न्यूज़ वीक', 'द डेली टेलीग्राफ़'** के संवाददाताओं को भी भारत छोड़ना पड़ा था।

सरकार पर कटाक्ष करने वाले कार्टून, व्यंग्य, चुटकुले भी सेंसर की मार से बच नहीं पाए। अपने समय की प्रसिद्ध व्यंग्य पत्रिका 'संकर्स वीकली' ने अंतिम संपादकीय में लिखा— **'तानाशाही कभी हँसी स्वीकार नहीं करती, क्योंकि तब लोग तानाशाह पर हँसेंगे।'** केवल पत्रकार ही नहीं, फिल्मी हस्तियों पर भी गाज गिरी। जो अभिनेता-कलाकार सरकार के समर्थन में नहीं थे, उन्हें काली सूची में डाल दिया गया।

प्रेस पर ऐसे कठोर अंकुश लगाने का दुष्परिणाम यह हुआ कि इंदिरा गांधी जमीनी हकीकत से पूरी तरह कट गईं। जनता के बड़े वर्ग में भीतर-भीतर ऐसा आक्रोश पनपा कि आपातकाल हटने के बाद जब मार्च 1977 में संसदीय चुनाव हुए, तब लगभग पूरे उत्तर भारत से कांग्रेस का सफाया हो गया। प्रेस की आज़ादी छीनने की कीमत इंदिरा गांधी को अपनी सत्ता गँवाकर चुकानी पड़ी।

June 25, 1975: The Day India's Democracy Was Put on Trial And the Legacy That Guides It Still

Dr. Prosenjit Nath

Author, Technocrat, Political Analyst

How Jayaprakash Narayan's resistance to the Emergency, backed by the RSS and later carried forward by the BJP, reshaped India's political destiny

History remembers dates not only for what happened on them but for how nations responded. For India, June 25, 1975, stands as a day of rupture — a moment when the world's largest democracy was hijacked under the guise of national stability. It was on this day that Prime Minister Indira Gandhi declared a national emergency, suspending civil liberties, arresting opposition leaders, and censoring the press. But just as significantly, it is the day that sparked a people's resistance movement led by one of the most morally uncompromising figures in Indian politics: Jayaprakash Narayan, or JP.

JP's name is etched in the conscience of our republic not only for what he stood against but for the alternative vision of democracy he offered — one rooted in ethics, decentralization, and mass participation. His fight during the Emergency is often remembered but not fully appreciated, especially in how it reshaped Indian politics, laid the foundation for the rise of the Bhartiya Janata Party (BJP), and even altered the institutional DNA of Indian democracy.

A Revolutionary Mind with a Democratic Soul

Born on 11 October 1902 in the village of Sitab Diara in Bihar, JP was shaped by simplicity and idealism from the start. He studied sociology and political science in the United States, where he was exposed to both Marxist thought and American democratic traditions. But upon returning to India, his ideological compass swung toward Gandhian socialism.

JP became a key figure in the Indian freedom struggle. He joined the Congress Socialist Party in the 1930s and later played a prominent role in the 1942 Quit India Movement, enduring jail time for his activism. However, post-independence, he stepped away from electoral politics, focusing instead on constructive social work, such as the Bhoodan movement led by Vinoba Bhave.

It was only when the post-independence state began to show signs of autocratic drift that JP returned to public life. And what he returned to was a country in political and economic disarray by the early 1970s — one where popular discontent was boiling, corruption rampant, and democratic accountability absent.

The Slide Toward Authoritarianism

The tipping point came with the Allahabad High Court verdict on June 12, 1975, which found Prime Minister Indira Gandhi guilty of electoral malpractice and invalidated her election to the Lok Sabha. Instead of stepping down, Indira Gandhi chose confrontation over compliance. Thirteen days later, an Emergency was declared under Article 352 of the Constitution.

This act turned a democratic republic into an administrative autocracy for 21 months. Citizens' rights were suspended, opposition leaders jailed, newspapers gagged, and judicial independence systematically eroded. Even basic constitutional guarantees were held in abeyance.

But the story of June 25 is not just a tale of democratic betrayal; it is also the story of courageous resistance.

Jayaprakash Narayan's Moral Revolution

JP stepped forward with his now-iconic call for "Sampoorna Kranti" — Total Revolution. This wasn't merely political opposition; it was a comprehensive call for ethical, social, and economic transformation. He didn't ask people to just vote out a party; he asked them to rethink how power, governance, and justice were understood in a modern India.

His movement found traction across social groups: students, farmers, workers, and professionals. What made it truly formidable was the broad ideological coalition he managed to forge. And central to this coalition was a force often derided but whose grassroots strength made the resistance operationally possible: the Rastriya Swayamsevak Sangh (RSS).

RSS: The Silent Spine of the Anti-Emergency Movement

Much of mainstream discourse has minimized the role played by the RSS during the Emergency, yet the historical record is unambiguous. The RSS emerged as the largest and most disciplined underground network in the country during those 21 months.

While thousands of Swayam sevaks were arrested, many others worked clandestinely to distribute banned literature, organize protests, and maintain morale among the public and opposition leaders. Their decentralized yet coordinated structure made them one of the most effective resistance networks. In fact, JP himself publicly praised the RSS, saying that had it not been for their organizational support, the anti-Emergency struggle could never have sustained itself at that scale.

This alliance between JP's moral idealism and the RSS's disciplined nationalism forged a lasting political alignment that continues to influence Indian politics today.

From Resistance to Rebirth: The Political Legacy of the Emergency

When the Emergency was lifted in early 1977 and elections were held, the people delivered their verdict — and it was scathing. The Congress Party was decimated, and for the first time since independence, a non-Congress coalition government came to power under the Janata Party.

This government, composed of socialists, nationalists, former Congress members, and RSS affiliates, was fragile and short-lived. Yet it marked a turning point. It proved that Indians valued freedom over fear and democracy over dictatorship. It also demonstrated the power of coalition politics grounded in ideological commitment rather than personal gain.

While the Janata experiment faltered, it birthed a new political consciousness — one in which the Bhartiya Janata Party (BJP) would take root and grow.

BJP and the Inheritance of JP's Vision

Many leaders of the BJP today, including Prime Minister Narendra Modi, acknowledge their ideological and moral inheritance from JP's movement. While the BJP and JP had differences in method and worldview, there's an undeniable overlap in values: clean governance, national pride, decentralization, and moral politics.

JP's appeal to inner conscience and ethical reform finds echoes in the BJP's narrative of "Sabka Saath, Sabka Vikas" and its emphasis on transparency, anti-corruption, and nation-first policies. Though political circumstances differ, the BJP has often presented itself as the natural torchbearer of the anti-Emergency legacy, framing its rise not just in terms of electoral strength but also ideological continuity.

The Constitutional Lessons and the People's Verdict

The Emergency also forced institutional introspection. One of its most lasting impacts was the 44th Constitutional Amendment, which introduced safeguards to prevent future misuse of emergency powers. It reinforced the notion that individual liberty and democratic oversight must never be sacrificed at the altar of political convenience.

But laws alone are not enough. The most powerful lesson of the Emergency was that people matter more than paperwork. The Indian voter — largely rural, often poor, but politically astute — overturned authoritarianism with the might of the ballot box. That remains one of the most remarkable democratic uprisings in the world.

Why June 25 Still Matters

Forty-nine years have passed since that fateful day. But June 25 is not merely a date in the calendar of Indian politics. It is a reminder of what happens when democratic complacency meets political ambition. But it is also a symbol of hope that even in the darkest hour, the Indian spirit does not bow.

Today, as the country confronts new challenges in global geopolitics, digital freedoms, and the culture of polarization, the legacy of Jayaprakash Narayan and the resistance of 1975 offers moral clarity. Democracy must not be reduced to just elections; it must be an everyday commitment to truth, transparency, and the welfare of the last Indian.

Loknayak Lives On

JP passed away in 1979, but his legacy survives not just in statues or memorials but in the everyday struggles of those who believe that politics is a service, not a profession. His belief in ethical politics, civic responsibility, and national renewal continues to inspire a spectrum of Indian thought, from grassroots movements to governance ideologies.

As we approach the 50th anniversary of that fateful night in 2025, the onus is on all of us — citizens, politicians, students, and thinkers — to remember, reflect, and rebuild. JP's dream of a just, democratic, and self-reliant India is not a closed chapter; it is a living vision.

June 25 is not just a date. It is a democratic duty.

Emergency 1975-77: The Night Democracy Lost its Voice

Varun Kumar

Independent Researcher

On the night of June 25, 1975, India changed forever. The then Prime Minister, Indira Gandhi, declared a state of Emergency, citing threats to national security. In truth, what followed was one of the darkest chapters in independent India's history—an unprecedented assault on democracy, civil liberties, and, most notably, the freedom of the press. For 21 months, the world's largest democracy functioned without its most basic democratic rights. Article 19(1)(a) of the Indian Constitution—guaranteeing freedom of speech and expression—was effectively suspended. Censorship was imposed on newspapers, journals, radio, and literature. The Ministry of Information and Broadcasting issued strict instructions: news was to be vetted, rewritten, or entirely blocked if it deviated from the government's official narrative.

The result was chilling. Major newspapers became tools of propaganda, their headlines reduced to state-approved slogans. Publishing houses lost power overnight. Book manuscripts were confiscated before printing. Opposition leaders, writers, poets, and actors who dared to question the regime were arrested or silenced. Fear and conformity replaced debate and dissent. According to Freedom House, India's global press freedom ranking, which had been as high as 3rd in the early 1970s, plummeted to 34th during the Emergency. The New York Times called it a "devastating blow to democratic society."

The numbers speak for themselves. In the first year alone, nearly 9,876 journalists were jailed. Over 2,974 cases were registered against individuals and groups for publishing or distributing "clandestine literature." Among them was Kuldeep Nayar, editor of The Indian Express, who was imprisoned for his open resistance. Other prominent voices—like K.R. Malkani, editor of the RSS-affiliated Motherland, and Lala Jagat Narayan, head of Hind Samachar—spent the entire Emergency behind bars. In his book The Midnight Knock, Malkani recounts how Motherland was the only newspaper to publish the truth on June 26, 1975—informing citizens not only about the Emergency but also about the wave of arrests and protests across the nation. The cost of truth was high. The newspaper's office in New Delhi was cut off from electricity, while its neighbouring left-aligned paper, Janayug, continued operating without hindrance. This was not governance; this was targeted repression.

Adding to the media crackdown, Indira Gandhi formally articulated media policies, accusing newspapers of "inciting violence and instability." This framing was used to justify harsh censorship across the board. As a result, several

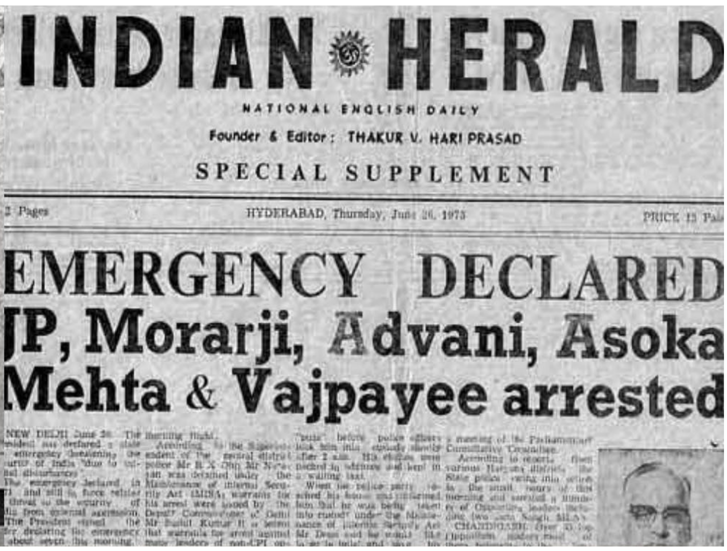

INDIAN HERALD

NATIONAL ENGLISH DAILY

Founder & Editor: THAKUR V. HARI PRASAD

SPECIAL SUPPLEMENT

HYDERABAD, Thursday, June 26, 1975

EMERGENCY DECLARED

JP, Morarji, Advani, Asoka Mehta & Vajpayee arrested

independent publications were forced to shut down due to pressure, lack of access to printing, or financial strangulation. Simultaneously, All India Radio (AIR) and Doordarshan—India's primary electronic media platforms—were instructed to function solely as instruments of government propaganda, broadcasting content that mirrored the ruling party's version of the truth.

Beyond the structural damage to press and politics, the Emergency also inflicted deep personal wounds. One of the most heart-wrenching accounts comes from Defence Minister Shri Rajnath Singh, who was then a young political worker. He broke down publicly while recalling how, during his imprisonment, he was not allowed to attend his mother's last rites. His grief symbolizes the pain endured not just by leaders but by countless ordinary citizens whose basic human dignity was denied during this dark period. Ironically, it was Indira Gandhi herself who had once proposed making All India Radio autonomous when she served as Information and Broadcasting Minister in 1966. But as Prime Minister, she reversed her own vision. Instead, 140 hand-picked loyalists were placed in AIR.

During the Emergency, more than 171 of her addresses were broadcast on AIR and Doordarshan, while opposition voices were deliberately blacked out. The public broadcaster was turned into a megaphone for one voice, one agenda. Post-Emergency, the Shah Commission, set up to investigate the abuses of that period, exposed the full extent of censorship and coercion. It found that authentic information was suppressed, public opinion manipulated, and intellectual dissent forcibly crushed. The long-term consequences were not just political—they were psychological. Citizens had learned to fear their own thoughts.

Today, as debates around media regulation resurface, especially in the context of election manifestos and policy proposals, it is crucial to remember this history. Critics have already raised concerns over the 2024 Congress manifesto, which some believe contains measures that could once again tighten control over the media—a domain that has consistently exposed malpractice, corruption, and ideological appeasement.

The Emergency was not just a constitutional crisis. It was a warning to future generations—a reminder that even a vibrant democracy like India can fall silent when checks and balances collapse and press freedom is traded for political survival. As we reflect on that era, the message is clear: a free and independent press is not a luxury—it is the lifeline of democracy. To lose it, even briefly, is to lose the soul.

आपातकाल: एक व्यक्ति बनाम राष्ट्र की लड़ाई

सचिन तिवारी

लेखक एवं स्तंभकार

स्वतंत्र भारत में नागरिक समाज की स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं मानवीय अस्मिता के पूर्ण संरक्षण हेतु एक समृद्ध एवं ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में संविधान का निर्माण किया गया। भारतीय जीवन-मूल्य, जो प्राचीन काल से ही लोकतांत्रिक एवं सह-अस्तित्व की चिंतन प्रणाली पर आधारित रहे थे, उन्हें संविधान के माध्यम से वर्षों की औपनिवेशिक सत्ता के अन्याय एवं अत्याचार पर आधारित निरंकुश शासन से मुक्ति मिल रही थी। संविधान के स्थायी रूप से लागू होने के बाद के कुछ वर्षों तक भारत में एक राजनीतिक दल की प्रधानता की स्थिति बनी रही, जिसका प्रमुख कारण विभिन्न माध्यमों से जनता के मनोभाव में इस विचार को स्थायित्व देना था कि समस्त स्वतंत्रता आंदोलन मात्र कांग्रेस द्वारा ही आगे बढ़ाया गया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की सत्ता पर पहला अधिकार केवल उसी का है। विमर्श के पटल से उन सभी विषयों को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया, जो कांग्रेस और उसके तत्कालीन नेताओं के पक्ष में नहीं थे।

पंडित नेहरू ने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में कांग्रेस की इस विचारधारा को, जिसमें वह स्वयं को देश की आज़ादी का एकमात्र कारक मानती थी, को आगे बढ़ाते हुए स्वतंत्र भारत के वर्तमान एवं भविष्य-निर्माण की समग्र इकाई के रूप में नेहरू परिवार की भूमिका को प्रतिस्थापित करने का कार्य किया। इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे कांग्रेस मात्र पंडित नेहरू एवं उनके परिवार के प्रतीक-चिह्न के रूप में सामने आने लगी। भारत राष्ट्र एवं कांग्रेस दल के भविष्य की एक ऐसी अकल्पनीय तस्वीर खींची जाने लगी, जिसमें नेहरू-गांधी परिवार के बिना दोनों को अपूर्ण एवं आधारहीन दर्शाया गया।

विरासत का भ्रम

पंडित नेहरू ने अपने जीवनकाल में ही अपनी सुपुत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को राजनीतिक रूप से स्थापित करने के प्रयास प्रारंभ कर दिए थे। 'कामराज प्लान' कांग्रेस एवं नेहरू की उन्हीं योजनाओं में से एक था, जिसके माध्यम से वे कांग्रेस के शीर्ष नेताओं को अपदस्थ कर श्रीमती गांधी के राजनीतिक भविष्य को सुनिश्चित करना चाहते थे। पंडित नेहरू की मृत्यु के बाद भी श्रीमती गांधी को प्रधानमंत्री बनाए जाने की मांग करने वाले बहुत से कांग्रेसी थे, परंतु तत्कालीन परिस्थितियों में यह संभव नहीं हो सका।

किन्तु लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के पश्चात श्रीमती इंदिरा गांधी को कांग्रेस के अन्य सभी योग्य एवं वरिष्ठ राजनेताओं को दरकिनार करके प्रधानमंत्री बनाया जाना, इस कल्पना को वास्तविक आधार प्रदान करता था कि वही पंडित नेहरू की उत्तराधिकारी हैं। और चूंकि पंडित नेहरू देश के प्रधानमंत्री रहे थे, अतः भविष्य में वही इस पद हेतु सर्वाधिक योग्य एवं स्वाभाविक विकल्प मानी जाएँगी। श्रीमती इंदिरा गांधी एवं उनके सहयोगी इस तथ्य से पूर्णतया अनभिज्ञ थे कि राष्ट्र किसी व्यक्ति विशेष या किसी राजनीतिक दल से कहीं ऊपर, एक शाश्वत एवं सार्वभौमिक सत्य है।

प्रधानमंत्री बनने के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी ने नेहरू की विरासत को सहेजते हुए उसे अपने राजनीतिक उत्कर्ष हेतु न केवल उपयोग किया, बल्कि कांग्रेस पार्टी को भी इस बात से भलीभांति अवगत करा दिया कि कांग्रेस का स्वयं का अस्तित्व अब नेहरू-गांधी परिवार के बिना शून्य है। प्रधानमंत्री बनने के कुछ ही वर्षों बाद, 1969 के राष्ट्रपति चुनाव में उन्होंने कांग्रेस पार्टी के अपने अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी की खिलाफत करते हुए अपने मनपसंद प्रत्याशी वी.वी. गिरि को न केवल प्रत्याशी के रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि उन्हें वोट देने की अपील भी की।

वास्तव में, इस चुनाव में इंदिरा गांधी बाबू जगजीवन राम को कांग्रेस का उम्मीदवार बनाना चाहती थीं, लेकिन कांग्रेस संसदीय बोर्ड की बैठक में उनकी बात नहीं मानी गई। इंदिरा गांधी के समर्थन से वी.वी. गिरि देश के राष्ट्रपति बने और इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस का आंतरिक विघटन हुआ। जिन कांग्रेस नेताओं ने एक समय इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने में सहायता की थी, उनका स्वयं का राजनीतिक भविष्य अंधकारमय हो गया।

'कांग्रेस (आर)' के नाम से इंदिरा गांधी ने न केवल नई कांग्रेस बनाई बल्कि उसे एक निजी संपत्ति के रूप में स्थापित कर दिया, जिससे राजनीतिक दलों की आंतरिक लोकतांत्रिक व्यवस्था पूरी तरह समाप्त हो गई।

आपातकाल के पूर्व की परिस्थिति

1971 के चुनाव से पूर्व भारतीय सेनाओं ने अपने पराक्रम एवं साहस से पूर्वी पाकिस्तान से पाकिस्तानी सेनाओं को न केवल खदेड़ दिया, बल्कि बांग्लादेश नामक एक नए देश का निर्माण भी किया। कांग्रेस ने युद्ध के निर्णय को अपने पक्ष में प्रचारित किया और श्रीमती गांधी के नेतृत्व को भारतीय सेनाओं के युद्ध-कौशल एवं वीरता से अधिक महत्व प्रदान किया। इस चुनाव में कांग्रेस ने बड़ी जीत हासिल की तथा उसे 352 सीटों पर विजय प्राप्त हुई।

आपातकाल से पूर्व, 1973 में श्रीमती इंदिरा गांधी ने सुप्रीम कोर्ट के अन्य तीन वरिष्ठ जजों को दरकिनार कर जस्टिस अजीत नाथ रे को मुख्य न्यायाधीश का पद प्रस्तावित किया। जस्टिस रे की नियुक्ति केशवानंद भारती मामले में सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले (24 अप्रैल, 1973) के दो दिन बाद, 26 अप्रैल, 1973 को हुई थी। केशवानंद भारती मामले में 13 जजों की संविधान पीठ ने 7-6 के बहुमत से निर्णय दिया था कि संसद संविधान के मूल

ढांचे में बदलाव या हस्तक्षेप नहीं कर सकती। यह फैसला इंदिरा गांधी सरकार के लिए बड़ा झटका था। इस निर्णय में 7 जज पक्ष में और 6 विपक्ष में थे। जस्टिस रे उन छह असंतुष्ट जजों में शामिल थे, जबकि तीन अन्य वरिष्ठ जज — जस्टिस शेलत, जस्टिस हेगड़े और जस्टिस ग्रोवर — फैसले का समर्थन करने वाले 7 जजों में थे। इंदिरा गांधी द्वारा लगाए गए आपातकाल के दौरान संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 22 के तहत मिले नागरिक अधिकारों (व्यक्तिगत स्वतंत्रता व अदालत में अपील का अधिकार) को निलंबित करने का निर्णय भी जस्टिस रे की खंडपीठ ने ही दिया था।

1975 के आपातकाल से पूर्व देश की जनता भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी एवं भुखमरी जैसी अनेक समस्याओं से पीड़ित थी। देश के प्रत्येक कोने से सत्ता प्रतिष्ठान के विरुद्ध आवाजें बुलंद हो रही थीं। देश के लाखों युवा एक बुजुर्ग जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में तत्कालीन सत्ता को चुनौती देने की विभिन्न योजनाओं पर कार्य कर रहे थे। विपक्ष के रूप में जनसंघ भी सत्ता के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद कर रहा था।

आपातकाल का अन्धकार

1971 के चुनाव में इंदिरा गांधी उत्तर प्रदेश के रायबरेली से चुनकर आई थीं। उनके खिलाफ चुनाव लड़ने वाले समाजवादी नेता राजनारायण ने इस चुनाव में इंदिरा गांधी पर सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग का आरोप लगाते हुए चुनाव परिणाम को इलाहाबाद हाईकोर्ट में चुनौती दी थी। 12 जून 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इंदिरा गांधी पर लगाए गए आरोप को सही ठहराते हुए उनके चुनाव को अवैध घोषित कर दिया तथा उन्हें तत्काल प्रभाव से इस्तीफा देने और अगले छह वर्षों तक चुनाव लड़ने पर पाबंदी लगा दी। 24 जून 1975 को सुप्रीम कोर्ट ने अपने अंतरिम फैसले में हाईकोर्ट के निर्णय को सही ठहराया, परंतु इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री बने रहने की छूट दी। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के आधार पर श्रीमती गांधी चाहतीं तो अंतिम निर्णय आने तक प्रधानमंत्री के पद पर रहकर सुप्रीम कोर्ट के अंतिम फैसले का इंतजार कर सकती थीं। लेकिन इस फैसले से पांच दिन पूर्व कांग्रेस की एक विशाल रैली को संबोधित करते हुए देवकांत बरुआ ने कहा था— "इंदिरा तेरी सुबह की जय, तेरी शाम की जय, तेरे काम की जय, तेरे नाम की जय।" इसी जनसभा में इंदिरा गांधी ने स्पष्ट कर दिया कि वे प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा नहीं देंगी।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अगले दिन यानी 25 जून को दिल्ली के रामलीला मैदान में जयप्रकाश नारायण की विशाल रैली हुई। जयप्रकाश नारायण ने इंदिरा गांधी पर देश में लोकतंत्र का गला घोंटने का आरोप लगाया और रामधारी सिंह दिनकर की कविता की पंक्ति "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है" को नारे के रूप में गूंजाया। इसके बाद श्रीमती इंदिरा गांधी ने संविधान के अनुच्छेद 352 का उपयोग करते हुए देश में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर दी। हालांकि इससे पूर्व ही पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर रे ने जनवरी 1975 में ही इंदिरा गांधी को आपातकाल लगाने की सलाह दी थी। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगाने का सुझाव भी दिया था, जिसे अमल में लाते हुए इंदिरा गांधी ने आपातकाल के बाद 4 जुलाई 1975 को संघ पर प्रतिबंध लगा दिया।

आपातकाल के दौरान नागरिकों के सभी मौलिक अधिकार

निलंबित कर दिए गए। जयप्रकाश नारायण, लालकृष्ण आडवाणी, अटल बिहारी वाजपेयी, जॉर्ज फर्नांडीस सहित अनेक प्रमुख नेताओं को जेल में डाल दिया गया। प्रेस पर भी सेंसरशिप लागू कर दी गई। हर समाचार पत्र में एक सेंसर अधिकारी नियुक्त किया गया, जिसकी अनुमति के बिना कोई भी समाचार प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। सरकार विरोधी समाचार छापने पर संपादक और पत्रकारों की गिरफ्तारी निश्चित थी। इंदिरा गांधी के पुत्र संजय गांधी ने उस समय सूचना एवं जनसंचार मंत्री रहे इंद्र कुमार गुजराल को केवल इस कारण से उनके मंत्रालय से हटवा दिया, क्योंकि श्रीमती इंदिरा गांधी का एक संदेश आकाशवाणी पर प्रसारित नहीं किया गया था।

आपातकाल के दौरान संपूर्ण कांग्रेस नेतृत्व गांधी परिवार की प्रशंसा में कसीदे पढ़ने में जुटा रहा। इंदिरा गांधी और उनके पुत्र संजय गांधी को देश का वर्तमान और भविष्य मानते हुए राजनीतिक चाटुकारिता की सभी सीमाएँ लांघ दी गईं। उस समय के कांग्रेसी शीर्ष नेतृत्व की सम्पूर्ण ऊर्जा नेहरू-गांधी परिवार की राजनीतिक विरासत को सुरक्षित रखने में ही समर्पित थी। न्यायपालिका पर प्रहार करते हुए कांग्रेस नेता सीएम स्टीफन ने कहा कि अब संसद की शक्ति किसी भी अदालत की सीमा से परे हो चुकी है। स्वर्ण सिंह ने अदालतों के आचरण पर नजर रखने के लिए संसद की एक समिति को सक्रिय करने की बात कही। कांग्रेस के कुछ नेताओं ने जब आपातकाल की ज्यादतियों के खिलाफ आवाज उठाई, तो उन्हें न केवल सत्ता और पार्टी से बाहर का रास्ता दिखा दिया गया, बल्कि उनके राजनीतिक भविष्य को समाप्त करने के लिए अनेक षड्यंत्र भी रचे गए।

निरंकुश सत्ता की वैधता के लिए संविधान संशोधन

आपातकाल के समय संविधान में अनेक संशोधन किए गए, जो पूरी तरह सत्ता की निरंकुशता और अन्याय को संविधान-सम्मत दिखाने के कुत्सित प्रयास थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल के ठीक बाद संविधान में एक अहम संशोधन किया, जिसे 38वां संविधान संशोधन कहा गया। इसके माध्यम से न्यायपालिका से आपातकाल की समीक्षा करने का अधिकार छीन लिया गया था।

38वें संशोधन के ठीक दो महीने बाद 39वां संविधान संशोधन किया गया। यह संशोधन इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री बनाए रखने के लिए किया गया था। दरअसल, इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इंदिरा गांधी के चुनाव को रद्द कर दिया था, लेकिन इस संशोधन के द्वारा अदालत से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त व्यक्ति के चुनाव की जांच का अधिकार ही समाप्त कर दिया गया। इस संशोधन के अनुसार प्रधानमंत्री के चुनाव की जांच केवल संसद द्वारा गठित समिति ही कर सकती थी।

42वें संविधान संशोधन के तहत सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की न्यायिक समीक्षा की शक्ति को कम करने का प्रयास किया गया। इस संशोधन ने राजनीतिक व्यवस्था को संसदीय संप्रभुता की ओर अग्रसर किया। इसने देश में लोकतांत्रिक अधिकारों में कटौती की और प्रधानमंत्री कार्यालय को व्यापक शक्तियां प्रदान कीं।

42वें संशोधन की धारा 4 ने संविधान के अनुच्छेद 31सी में संशोधन किया था, ताकि संविधान के भाग IV में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को भाग III में वर्णित व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों पर वरीयता दी जा सके। इस प्रकार के अनेक संविधान संशोधन केवल अपने अलोकतांत्रिक एवं अनैतिक कृत्यों को वैध ठहराने और संपूर्ण भारतीय जनमानस की मौलिक स्वतंत्रता को कुचलने के उद्देश्य से किए गए थे।

राष्ट्र बीज तत्व, व्यक्ति निमित्त मात्र

इमरजेंसी के अन्याय एवं पीड़ा के विरुद्ध सजग भारतीय समाज का आक्रोश निरंतर बढ़ता जा रहा था। बड़े राजनीतिक नेताओं, स्वतंत्र पत्रकारों तथा समाज कार्य में लगे श्रेष्ठ जनों की गिरफ्तारी के पश्चात लोकतंत्र एवं राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा का दायित्व साधारण नागरिकों ने अपने हाथों में ले लिया। समूचा देश तत्कालीन सत्ता को यह संदेश दे रहा था कि भारतीय लोकतंत्र किसी एक व्यक्ति अथवा उसकी अतृप्त महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन मात्र नहीं है।

18 जनवरी 1977 को इंदिरा गांधी ने आम चुनाव कराने की घोषणा की। मार्च 1977 में हुए इन चुनावों में कांग्रेस पार्टी को करारी हार का सामना करना पड़ा। जनता पार्टी को सबसे अधिक मत प्राप्त हुए और मोरारजी देसाई देश के प्रधानमंत्री बने। 21 मार्च 1977 को इमरजेंसी को आधिकारिक रूप से समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही देश में पुनः लोकतांत्रिक व्यवस्था बहाल हुई। मीडिया पर लगाए गए प्रतिबंध हटा दिए गए तथा सभी राजनीतिक बंदियों को जेल से रिहा कर दिया गया। नई सरकार ने संविधान में 44वां संशोधन कर इमरजेंसी लगाने के नियमों को और अधिक कठोर बनाया, ताकि भविष्य में कोई भी सरकार सरलता से इमरजेंसी न लगा सके। इमरजेंसी के दुष्परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्टी की लोकप्रियता में भारी गिरावट आई और जनमानस में कांग्रेस के प्रति व्यापक आक्रोश उत्पन्न हुआ।

आपातकाल ने भारतीय लोकतंत्र को एक नई दिशा दी। इस ऐतिहासिक घटना ने सिद्ध कर दिया कि भारत में लोकतांत्रिक मूल्यों का उन्मूलन इतना सहज नहीं है। जनता की शक्ति सदैव सर्वोपरि रहती है। इमरजेंसी के दौरान जो कुछ घटित हुआ, वह भारतीय इतिहास का एक काला अध्याय अवश्य है, परंतु इसने हमें यह भी सिखाया कि हमें अपने अधिकारों की रक्षा के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए और लोकतांत्रिक परंपराओं को निरंतर सुदृढ़ करना चाहिए। आपातकाल ने हमारी परंपरा के उस मूलभूत तत्व को पुनः रेखांकित किया कि व्यक्ति से परे समाज एवं राष्ट्र का अस्तित्व अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्र केवल भूखंड नहीं, अपितु एक जीवंत आत्मतत्त्व है और इसके मानवीय मूल्य किसी एक व्यक्ति की हठधर्मिता के कारण कभी नष्ट नहीं किए जा सकते।

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation in collaboration with Prabhat Prakashan, Public Policy Research Centre, and Ekatm Manavdarshan Anusandhan evam Vikas Pratishthan organised the Two-Day National Commemorative Seminar on “60 Years of Pt. Deendayal Upadhyaya’s Integral Humanism Lectures” on 31st May - 1st June 2025 at the NDMC Convention Centre, New Delhi

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation organised a Special Programme on “50 Years of the Emergency” on 24th June 2025 at Teen Murti Auditorium, New Delhi. Hon’ble Union Home Minister Shri Amit Shah addressed the gathering and delivered the Keynote Address.

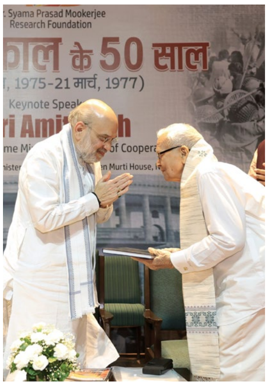

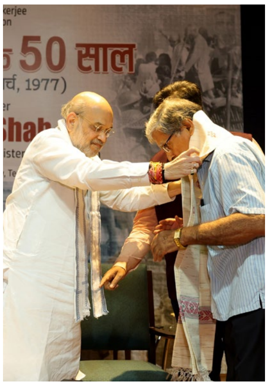

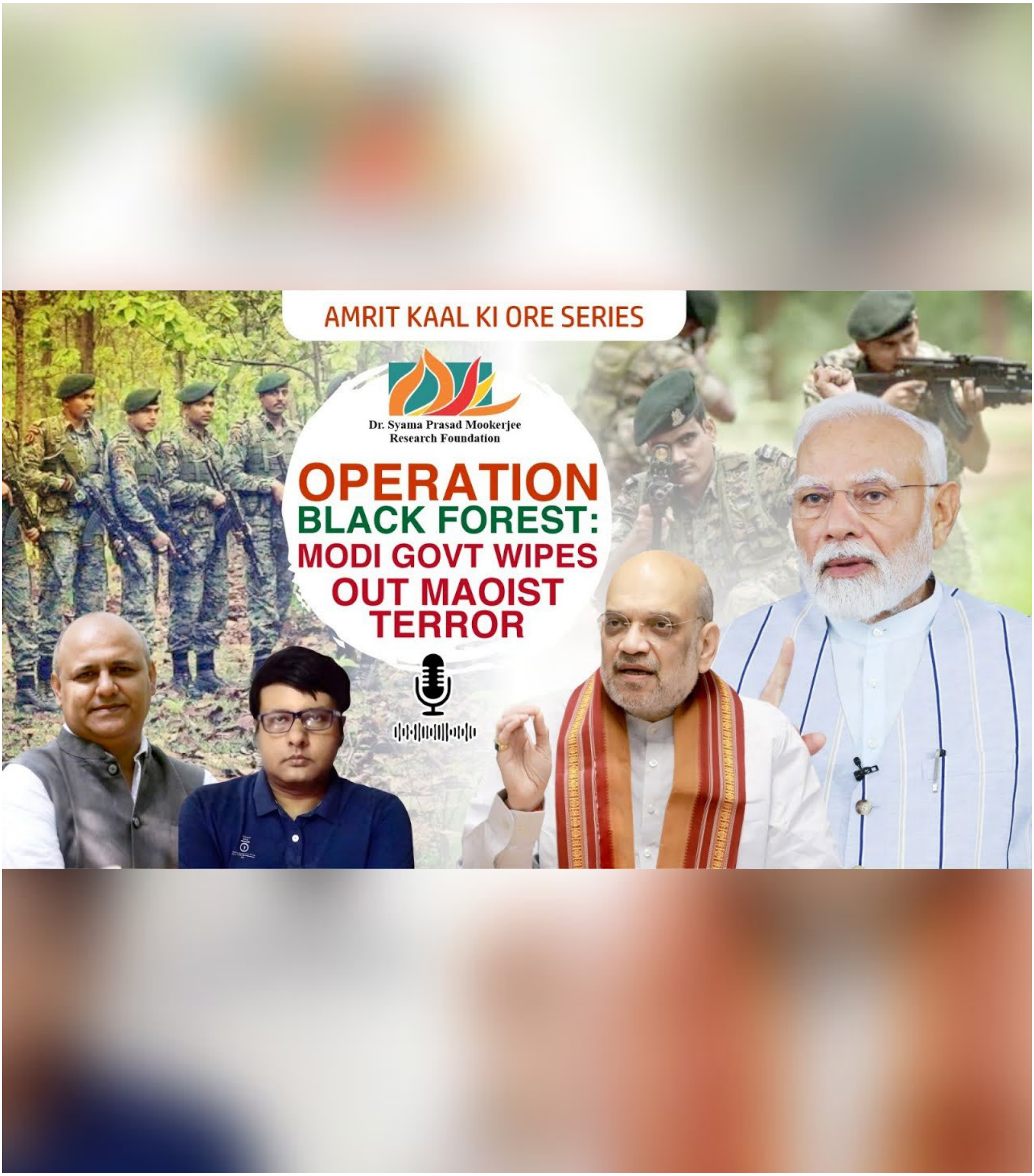
AMRIT KAAL KI ORE SERIES
Dr. Syama Prasad Mookerjee
Research Foundation
OPERATION
BLACK FOREST:
MODI GOVT WIPES
OUT MAOIST
TERROR

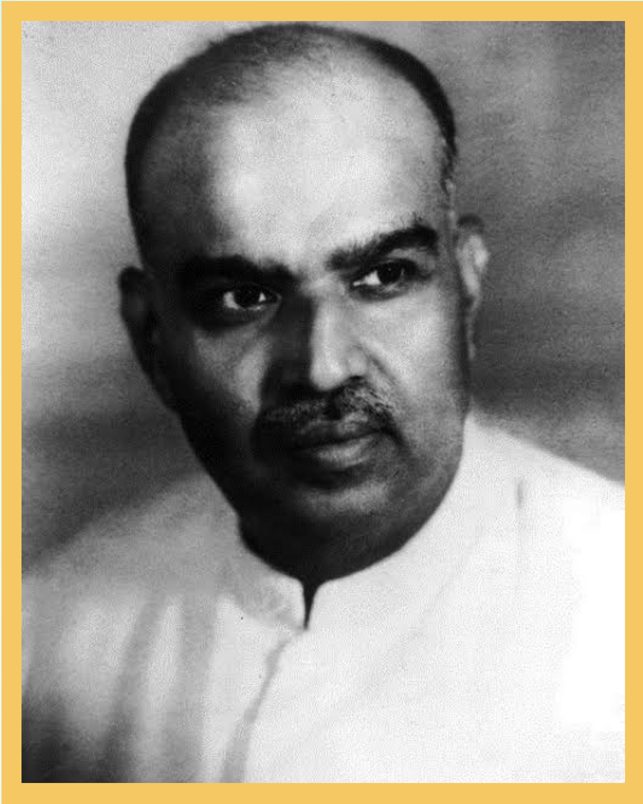

"Freedom consists not only in the absence of restraint but also in the presence of opportunity. Liberty is not a single and simple conception. It has four elements, National, Political, Personal and Economic.

The man who is fully free is one who lives in a country which is independent; in a state which is democratic; in a society where laws are equal and restrictions at a minimum; in an economic system in which national interests are protected and the citizen has the scope of secure livelihood, an assured comfort and full opportunity to rise by merit."

Dr. Syama Prasad Mookerjee

27 November 1937

Convocation Address in Patna University

Published By:

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

9, Ashoka Road New Delhi - 110001

E-mail: office@spmrf.org, Phone: 011-23070809